

ॐ श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गो जयतः ॥

४५	स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरथोऽजे ।	४६
पूर्णव्रतं वृत्ति विष्वकर्मन कथा सुन्न धर्मः स्वचुष्टिः पुंसा विष्वकर्मन कथा सुन्न		वृत्ति विष्वकर्मन कथा सुन्न धर्मः स्वचुष्टिः पुंसा विष्वकर्मन कथा सुन्न
४७	अहैतुक्यप्रतिहता यवामासुप्रसीदति ॥	४८

सर्वोक्तुष्ट धर्म है वह जो आत्मा को आनन्द प्रदायक । सब धर्मों का अष्ट रीति से पालन करते जीव निरन्तर ।  
भक्ति अधोऽजे की अहैतुकी विष्वशूल्य अति मंगलदायक ॥ किन्तु हरि-कथा-प्रीति न हो, त्रैम ऋष्यं सभी, केवल चंधनकर ॥

वर्ष ६      }      गौराब्द ४७४, मास—वामन ५, वार-प्रद्युम्न  
                }      मंगलवार, २१ ज्येष्ठ, सम्वत् २०१७, १४ जून १९६०      }      संख्या १

## श्रीश्रीसंकर्षण-स्तोत्रम्

मृणालगौरं सितिवाससं स्फुरत्, किरीट-केयूर-कटिन-कंकणम् ।  
प्रसङ्ग-वक्त्रारुण्य-ज्ञोचनं वृतं ददर्श सिद्धे शवर-मण्डलैः प्रभुम् ॥३०॥  
ततः समाधाय मनो मनीषया, वभाष एतत् प्रतिक्षब्धवागसौ ।  
नियम्य सर्वेन्द्रिय-वाह्यवर्तनं जगद्गुरुं सात्वत शास्त्र-विग्रहम् ॥३१॥

### चित्रकेतुरुवाच—

अजित जितः सममतिभिः, साधुभिर्मवान् जितात्मभिर्भवता ।  
विजितास्तेऽपि च भजतामकामात्मनो य आत्मदौऽतिकरुणः ॥३४॥  
क्षित्यादिभिरेव किलावृतः सप्तभिर्दशगुणोत्तरैरशङ्कोषः ।  
यत्र पतस्यणुकणः सहायडकोटि-कोटिभिस्तदनन्तः ॥३५॥  
कामविषयस्तयि इचिता, न परम रोहन्ति यथा कर्मभवीजानि ।  
ज्ञानात्मन्यगुणमये, गुणगणातोऽस्य दून्दूजलानि ॥३६॥  
जितमजित तदा भवता यदाह भागवतं चर्ममनवद्यम् ।  
निदिकञ्चना ये सुनय आत्मारामा यमुपासतेऽपवर्गाय ॥३७॥  
न हि भगवत्तिरितमिदं त्वहर्शनान्नव्यामखिल-पापक्षयः ।  
यशाम-सकृदद्वयणात् पुक्कशोऽपि विमुच्यते संसारात् ॥३८॥

अथ भगवन् वयमधुना त्वद्वज्ञोक-परिमुष्टाशयमत्ता ।  
 सुरक्षित्या यत् कथितं सावकेन कथमन्यथा भवति ॥४५॥  
 विदितमन्त समस्तं तत्व जगदात्मनो जनैरिहाचरितम् ।  
 विज्ञात्य परमगुरोः किष्ठिदिव सवितुरिव खण्डोत्तमः ॥४६॥  
 यं वै श्वसन्तमनु विश्वस्तुः श्वसन्ति, यं चेकितात्मनु चित्तय उच्चकन्ति ।  
 भूमयदलं सरथपायति यस्य मुर्दिग्न, तस्मै नमो भगवतेऽस्तु सहस्रमुद्गन् ॥४७॥  
 —श्रीमद्भागवते पष्ठस्कन्धे चित्रकेतूपाख्याने पोदशोऽध्याये

### अनुवाद—

महाराज चित्रकेतुने देखा कि भगवान् शेषजी सनकुमार आदि सिद्धेश्वरोंके मण्डलमें विराजमान हैं। उनका शरीर कमलनालके समान गौरवर्ण है। नीले रंगका वस्त्र पहने हुए हैं। सिरपर किरीट, बाहोंमें बाजुवंद कमरमें करधनी और कलाईमें कंगन आदि आभूषण चमक रहे हैं। नेत्र रतनारं हैं और मुख पर प्रसन्नता छा रही है ॥३०॥

थोड़ी देर बाद उन्होंने मनको समाहित किया और सम्पूर्ण इन्द्रियोंकी बाह्यवृत्तिको रोककर वाक् शक्तिको लाभ किया। फिर उन सच्चिदानन्द-विग्रह जगदगुरु भगवान्‌की, जिनके स्वरूपका पञ्चरात्र आदि भवित शास्त्रोंमें वर्णन किया गया है, इस प्रकार स्तुति की ॥३३॥

हे अजित ! आप दूसरों लिये अजित होने पर भी जितेन्द्रिय और समदर्शी साधुओं द्वारा जित लिये गये हैं अर्थात् उन्होंने आपको अपने बशीभूत कर लिया है। आपने भी अपने सौन्दर्य, माधुर्य, कारुण्य आदि गुणोंसे उनको अपने बशमें कर लिया है। अहो ! आप धन्य हैं !! क्योंकि जो निष्काम भावसे आपका भजन करते हैं, उन्हें आप करुणा-परवश होकर अपने आपको भी दे डालते हैं ॥३४॥

यह ब्रह्मारण्डकोष जो क्रमशः एक-से-एक दसगुने विमुत वृथ्वी जल, तेज, वायु, आकाश, महत् और अहंकार—इन सात आवरणों ( सप्त-प्रकृति ) से घिरा हुआ है, अपने ही समान दूसरे करोड़ों ब्रह्मारण्डोंके सहित आपमें एक परमाणुके समान धूमता रहता है

और फिर भी उसे आपकी सीमाका पता नहीं है। इसलिये आप 'अनन्त' के नामसे प्रसिद्ध हैं ॥३५॥

हे परमात्मन ! आप ज्ञानात्मा और निर्गुण हैं। इसलिये जो राज्यप्राप्ति आदि कामनाओंकी पूर्तिके लिये आपकी उपासना करते हैं, उनका भी फिरसे जन्म नहीं होता, ठीक, उसी तरह जिस प्रकार भुने हुए बीजोंसे अंकुर नहीं उगते। इसका कारण यह है कि जीवको जो सुख-दुःख आदि द्वन्द्व प्राप्त होते हैं, वे सत्य आदि गुणोंसे ही होते हैं, निर्गुणसे नहीं ॥३६॥

हे अजित ! जब आपने अपनी प्राप्तिके उपाय स्वरूप अनवश्य भागवत धर्मका उपदेश किया है, तब आपने सबको जीत लिया है। क्योंकि आपने पास कुछ भी संप्रह परिप्रह करने वाले, समहष्टि सम्पन्न आर्थशेष सनकुमार आदि परमविग्रह भी मोक्षकी प्राप्तिके लिये उसी भागवत धर्मका आश्रय लेते हैं ॥४०॥

भगवन् ! आपके दर्शनमात्रसे मनुष्योंके सारे पाप दूर हो जाते हैं, यह कोई असंभव वात नहीं है, क्योंकि आपका नाम एक बार अवण करनेसे नीच चारणाल भी संसारसे मुक्त हो जाता है ॥४४॥

भगवन् ! इस समय आपके दर्शनमात्रसे ही मेरे अन्तःकरणके समस्त पाप और उसके कार्यभूत राग लोभ आदि दूर हो गये हैं, सो ठीक ही है, क्योंकि आपके अनन्य प्रेमीभक्त देवर्षि नारदजीने जो कुछ कहा है, वह मिथ्या कैसे हो सकता है ॥४५॥

हे अनन्त ! संसारमें प्राणी जो कुछ करते हैं, वह सब आप जानते हैं; क्योंकि आप सबके अन्तर्यामी

हैं। जैसे सूर्यके सामने जुगनूके लिये कुछ भी प्रकाशित करनेके लिये नहीं है, उसी प्रकार परम गुरु ( सर्व-प्रकाशक ) आपसे मेरे जैसोंके लिये निवेदन वरनेका है ही क्या ?—आप सब कुछ जानते हैं ॥४६॥

आप चेष्टायुक्त होने पर पीछेसे विश्व सद्ग

ब्रह्मा आदि देवतागण चेष्टा करनेमें समर्थ होते हैं; आप दर्शन करनेवे पीछेसे ज्ञानेन्द्रियाँ कार्य करती हैं; आपके मस्तक पर यह भूमरण्डल सरसोंके दाने के समान जान पड़ता है। हे सहस्र-शीर्ष भगवन् ! आपको बार-बार नमस्कार करता हूँ ॥४८॥

## संत (सज्जन) के लक्षण

### मौनी-२६

श्रीगीतामें भगवान् श्रीकृष्णने कहा है—

‘दुखेष्वनुद्दिग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः ।  
वीतरागभयकोधः स्थितधीमुनिहृच्यते ॥’

अर्थात् जो दुखोंके उपस्थित होने पर भी दुःखी नहीं होता और सुखोंमें स्थृद्वाराहित रहता है, जो राग, भय और कोधसे रहित होता है, जो विषयोंमें आस-क्वितशून्य होता है, ऐसा स्थिर-बुद्धि-सम्पन्न जीव ही मुनि शब्दवाच्य है। जब ब्रह्मचारी समावर्तन कर गृहस्थ जीवनमें नाना-प्रकारसे राग-ह्रेष, भय, कोध आदिका शिकार होता है और जड़ सुखकी प्राप्तिमें तथा जड़ दुःखको दूर करने में तत्पर होता है, परन्तु जब उसे इस कार्यमें सफलता नहीं मिलती, तब दुःखों-से मुक्त होनेके लिये बानप्रस्थाका अवलम्बन करता है। ऐसे बानप्रस्थी बनचारीको मुनि बहते हैं। जो गृहस्थ अपने पुत्रके पुत्र—पौत्रका दर्शनकर पचासवर्ष से अधिककी उम्रमें जड़ विषयोंकी क्षणभंगुरता उपलब्धिकर भगवद्वज्जन करनेके लिये बनमें अर्थात् साधु-संगमें गमन करते हैं, उनकी वृत्ति-मुनि वृत्ति कहलाती है। मुनि-वृत्ति वाले सज्जन ही ‘मौनी’ कहलाते हैं।

जो ध्यूल और सूदम शरीरमें आत्मबुद्धि रखते रखते हैं, वे असत् हैं, क्योंकि शरीर और मन दो प्रकारकी परिवर्तनशील और क्षणमुंगर उपाधियाँ

हैं। वैष्णव ही एकमात्र सत् शब्दवाच्य है, दूसरे नहीं। इसीलिये सत्सम्प्रदायके आचार्य श्रीरामानुजाचार्यने अपने संप्रदायको सत् सम्प्रदाय कहा है। मायावादी और कर्मकल भोगी व्यक्ति असत् हैं, क्योंकि उनके अनुष्ठान-समूह स्थूल और सूदम-उपाधि-युक्त होते हैं। सज्जन पुरुष बाह्य जगत्के विकारोंसे सर्वथा दूर रह कर निरन्तर भागवत्-सेवामें तत्पर रहते हैं। बाह्य जगत्के ऊँचे शब्द-समूह उनके कानोंमें प्रवेश तो करते हैं, परन्तु उनसे सज्जन पुरुष कर्त्ता सहयोग नहीं करते। वे निर्जन स्थानमें न तो उच्च-स्वरमें बोलते हैं और न चुप ही रहते हैं। वे उच्च स्वरसे अथवा मन ही मन प्रत्येक अवस्थामें सदा-सर्वदा हरिनाम करते हैं। वे उच्च स्वरसे हरिनाम करते हैं, फिर भी उनका मौन-ब्रत भंग नहीं होता। कुछ लोगोंकी धारणा यह है कि जो लोग मुखसे तो नहीं बोलते, परन्तु उनके हृदयमें भले ही अकुरन्त कामनाएँ हों और उन कामनाओंको वे भले ही स्लेट या कागज पर तथा इंगित आदि द्वारा प्रकाश करें, वे ही मौनी हैं। परन्तु ऐसी धारणा करनेवाले भ्रममें हैं। अवैष्णव लोग बाहरसे मौन-ब्रत अवलम्बन करने पर भी वास्तवमें मौनी नहीं हो सकते। अव्यक्त वाक्-वेग उनका मौन-ब्रत भंग कर देता है। सज्जन पुरुष व्यर्थके बकवादों (प्रजल्य) से

दूर रहते हैं। अव्यक्त वाक्वेग उन्हें पोषित नहीं करता। उच्च स्वरसे चारों और हरिनामकी ध्वनिका विस्तार करके भी वे सच्चे मौनी हैं। वे मौनी होकर भी वैदिकी और लौकिकी समस्त क्रियाओंको हरि सेवाके अनुकूल रूपमें नियुक्त करते हैं।

भगवत्-चर्चा द्वारा अथवा भगवन्नाम आदि कीर्तन द्वारा मौन-ब्रत भैरंग नहीं होता। भगवद्गुरुओंमें सारे सद्गुण नित्यकाल निवास करते हैं। अभक्त पुरुषोंमें इन गुणोंकी संभावना नहीं। इसलिये सञ्जन पुरुष ही एकमात्र सच्चे मौनी हैं।

—ॐ विश्वपाद श्रीमद्भास्तुद्वान्त सरस्वती गोस्वामी

## प्रीति

‘प्रीति’—यह बड़ा ही मधुर शब्द है। इसका उच्चारण होनेके साथ-साथ उच्चारणकारी और श्रोताके हृदयमें एक अतीव मधुर भाव उदित हो पड़ता है। यद्यपि सभी इसका अर्थ ठीक ठौक नहीं समझ पाते, फिर भी वे इस नामको सुन कर आनन्दित होते हैं। जीवमात्र प्रीतिके वशीभूत है। प्रतिके लिये बहुतेरे अपने प्राणों तकका विसर्जन कर देते हैं।

प्रीति ही मानव-जीवनका एकमात्र उद्देश्य है। बहुतसे लोग ऐसा समझते हैं कि अपने स्वार्थकी प्राप्ति ही जीवनका मुख्य प्रयोजन है। परन्तु यह बात ठीक नहीं है। प्रीतिके लिये ममुष्य अपने समस्त प्रकारके स्वार्थोंका तुगणके समान त्याग कर देता है। स्वार्थ—ऐवल अपनी सुख-स्वच्छन्दताका ही अन्वेषण करता है; परन्तु प्रीति—प्रिय-वस्तु या प्रिय व्यक्तिकी सुख-स्वच्छन्दताके लिये अपने समस्त प्रकारके स्वार्थोंका त्याग कर देती है। जहाँ स्वार्थ और प्रीतिमें परस्पर विरोधी होता है, वहाँ प्रीतिकी ही सदा विजय होती है। विशेषतः स्वार्थ अत्यन्त प्रबल होने पर भी वह सदा-सर्वदा प्रीतिके अधीन ही रहता है। स्वर्थ किसे कहते हैं? जो अपना प्रिय हो—उसे स्वार्थ कहते हैं। अतएव मानव-जीवन प्रीतिके अधीन है—यह कथन निरर्थक नहीं है। स्वार्थ आदि जीवनका तात्पर्य होने पर भी प्रीति ही जीवनका मुख्य तात्पर्य है।

परमार्थ-तत्त्वमें भी प्रीतिकी प्रवानता देखी जाती है। जो लोग जागतिक सुखोंको अनित्य मानकर पारमार्थिक सुखकी खोज करते हैं, वे या तो अपनी भोग-वासनाओंके अधीन होते हैं अथवा मुक्तिकी कामनासे उत्तेजित होते हैं। जो भोग-वासनाओंके अधीन होते हैं, वे धन-सम्पत्ति पुत्र-कलत्र और राज्य-सुख आदिकी खोजमें व्यस्त रहते हैं अथवा स्वर्ग और ब्रह्मलोकके सुखोंको प्राप्त करनेके लिये लालायित रहते हैं। ये भोग-समूह उनको अतिशय प्रिय हैं, इसीलिये वे उनको पानेके लिये व्यस्त रहते हैं। पुनः जो मुक्तिकी कामना करते हैं, उनको भोग-विषयोंमें प्रीति नहीं होती, उन्हें भोगोंसे दूर रहनेमें ही आनन्द आता है। अतएव ऐसे लोग मुक्तिमें प्रीति रहने के कारण मुक्तिका अन्वेषण करते हैं। भोग-प्रिय व्यक्ति भांगोंमें प्रीति पानेकी आशा रखता है और मुक्ति-प्रिय व्यक्ति उस प्रीतिको मुक्तिमें ही पानेकी आशा करता है। अतएव दोनों प्रकारके मनुष्योंका उद्देश्य ‘प्रीति’ ही है। इन दोनोंके अतिरिक्त पारमार्थिक मनुष्योंका उद्देश्य भी प्रीति ही है। वैष्णव कवि चण्डीदास प्रीतिके सम्बन्धमें कहते हैं—

पिरीति बजिया ६ तिन आखर,  
६ तिन भुवन-सार।  
यह मोर मने हय राति दिने,  
इहा वह नाहि आर॥

विषि एक चिते भाविते भाविते,  
निरमान कैला "पि"।  
रसर सागर मन्थन करिते,  
ताहे उपजिल्ला "री"॥  
पुन ये मथिया अभिया हईल,  
ताहे भियहैल "ति"।  
सकल सुखेर ए सोन आखर,  
तुलना दिव कि॥  
याहार मरमे परशक्त यतने,  
ए सोन आखर सार।  
धरम करम, सरम भरम,  
किया जाति कुछ तार॥  
एहेन पिरीति ना जानि कि रीति,  
परिणामे किया हय।  
पिरीति-बंधन बदहै विषम,  
द्विज चण्डीदास कथ॥

—चण्डीदासजी कहते हैं कि मुझे तो ऐसा लगता है कि 'पिरीति'—ये तीन अच्छर ही सम्पूर्ण जगतके सार-स्वरूप हैं। यहीं नहीं, मुझे दिन-रात आठों पहर ऐसा प्रतीत होता है कि इन तीन अच्छरोंके सिवा इस संसारमें कुछ है ही नहीं। लोक पितामह ब्रह्माने एकान्त मनसे चिन्तन करते-करते 'पी'—अच्छर-का निर्माण किया। परचान् रस-समुद्रका मन्थन करनेसे उसमें 'री'—अच्छर उत्पन्न हुआ। पुनः जघ फिसे उस रस समुद्रका दुचारा मन्थन किया गया, तब उससे जो अमृत निकला, वही तृतीय अच्छर 'ति' हुआ। ये तीनों अच्छर समस्त प्रकारके सुखोंके आकर हैं। इनकी तुलना किससे दूँ; तुलनाका कोई स्थल ही नहीं दिखलायी पड़ता है। जिस सौभाग्य-वानके हृदयमें ये तीनों अच्छर बलपूर्वक प्रवेश कर जाते हैं, उसका लौकिक धर्म-कर्म दूर हो जाता है, उसकी लज्जा, शील, जाति और कुल—सब कुछ छुट जाता है। ऐसी परीति (प्रीति) की रीति क्या है? मैं नहीं जानता एवं इसका परिणाम क्या होगा यह भी नहीं जानता।'

पदार्थ दो प्रकारके होते हैं—चित् और जड़। चित् पदार्थ ही मूल पदार्थ है और जड़—उसकी विकृति है। जड़ पदार्थको चिदूवस्तुकी छाया भी कह सकत हैं। मूल वस्तुमें जो-जो बातें पायी जाती हैं, उसकी छायामें भी वे सब बातें कुछ हद तक पायी जाती हैं। अतएव मूलवस्तुरूप चितृतत्त्वमें जो कुछ है, जड़में भी अवश्य रहेगा।

चित्-पदार्थका धर्म अनुसंधान करनेसे यह जाना जाता है कि प्रीति ही चिदूवस्तुका एकमात्र धर्म है। यह धर्म प्रतिफलित होकर जड़वस्तुमें कुछ-कुछ अवश्य ही वर्तमान रहता है। जड़ जिस प्रकारसे चिदूवस्तुकी विकृति है, उसी प्रकार 'आकर्षण और गति' प्रीति धर्मकी विकृति है। यह विकृति ही जड़-पदार्थके धर्मके नामसे परिचित होती है। प्रत्येक जड़ीय परमाणुमें आकर्षण और गतिरूप प्रीतिका विकृत भाव पाया जाता है। अब यह देखा जाय कि प्रीतिका स्वरूप क्या है?

आकर्षण और गति विशुद्धरूपमें चिदूवस्तुमें प्रीतिके रूपमें लक्षित होती है। आत्मा ही चिदूवस्तु है। आत्मा कहनेसे विमु-चैतन्य परमात्मा और अरुचैतन्य जीवात्मा, दोनोंका बोध होता है। विमु-चैतन्य और अरुचैतन्य दोनों ही प्रीतिधर्मवाले हैं। आत्माके अतिरिक्त और कहीं भी विशुद्ध प्रीतिधर्म नहीं है। आत्माकी छाया—जड़ पदार्थमें विशुद्ध धर्मकी विकृतिमात्र होती है, उसमें धर्म स्वयं नहीं रहता। इसीलिये जड़ जगतकी किसी भौतिक वस्तुमें विशुद्ध प्रीति नहीं पायी जाती है। उसी विकृत धर्मके अनुसार परमाणु-समूह परस्पर एक जगह मिलकर स्थूल होते हैं। आकर्षणके द्वारा एक वस्तु दूसरी वस्तुके निकट पहुँचती है। स्वतन्त्र गति-शक्तिद्वारा पृथक् होकर सूर्य आदि मण्डलकी धरण किया सम्पादित होती है। प्रतिफलित वस्तु और प्रतिफलित धर्ममें हम जो कुछ देख पाते हैं, वह सब कुछ मूल वस्तुमें विशुद्ध रूपमें विद्यमान है।

आत्मामें भी स्वतन्त्रता और आकर्षणवश्यता

लक्षित होती है। इस जगतमें आत्मा वद्व जीवके रूपमें वर्तमान है। जावात्मा या अगुचैतन्य संख्यामें अनन्त हैं। वे सभो प्रीतिधर्म विशिष्ट हैं। उस प्रीतिधर्मका परिचय यह है कि प्रत्येक आत्मा परस्पर आकर्षण करती है। अथव प्रत्येह आत्मा स्वतन्त्रवावशतः पृथक् रहना चाहती है। जड़ जगतमें अर्थात् प्रतिफलित जगतमें एह वस्तु दूपरी वस्तुको अपनी और खीचती है और प्रत्येक वस्तु अपनी-अपनी स्वतंत्र गतिके कारण अलग-अलग रहना चाहती है। वृहत् जडवस्तु जुद्र जडवस्तुको खीचती है। सूर्य वृहत् हैं, इसलिये वे दूसरे-दूसरे प्रहों और उपमहोंको अपनी और खीचते हैं। परन्तु वे प्रह और उपमहसमूह अपनी अपनी स्वतन्त्र गतिके बलसे सूर्यसे पृथक् रहना चाहते हैं। इस खीचता-तानीमें वे गोलाकार रूपमें भ्रमण करते हैं। पुनः प्रदृंगको भी परस्परमें आकर्षण और गति होती है, जो भ्रमणके कार्यमें सहायक होती है। प्रतिफलित जगतमें हम जैसा देखते हैं, चित्तजगतमें भी वही विशुद्धरूपमें विचमान हैं। छान्दोग्य उपनिषद् में कहते हैं—

‘स ब्रूयाद् यावान् वा अयमाकाशस्तावानेषोऽन्तहृदय आकाश उभे अस्मिन् यावापृथिवी अन्तरेव समाहिते उभावग्निश्च वायुश्च सूर्यचन्द्रमसावुभा विशुद्धत्राणि यच्चास्येहास्ति यच्च नास्ति सर्वं तस्मिन् समाहितमिति ॥’ (छा० दा० १३)

प्रतिफलित जगतमें पंचभूत, चन्द्र, सूर्य, विशुद्ध, नक्षत्र आदि देखे जाते हैं। ये सब-के-सब आदर्शरूपमें चित्तजगतमें अर्थात् ब्रह्मपुरमें वर्तमान हैं। अन्तर यह है कि चित् जगतमें सब कुछ विशुद्ध, आनन्दमय और सर्वदोष शून्य होता है; परन्तु जड़ जगतमें वही दोषयुक्त, अस्पूर्ण और सुख-दुखजनक होता है।

अब देखिये, चिद् जगतका मूलधर्म प्रीति है। अतएव कविवर चरणीदास जी कहते हैं—

“ब्रह्माण्ड व्यापिया आलये जे-जन,  
केह न देखये तारे ।

प्रेमेर प्रीति जे जन जानये,  
सेह से पाहते पारे ॥  
‘प्रीति’ ‘प्रीति’ तीनटी अंखर  
पि-री-ति त्रिविधि मत ।  
भजिते भजिते निगृह हहते  
हहते एकह मत ॥”

चिन्मय वृन्दावन-बिहारी कृष्ण ही चित्तजगतके सूर्य हैं। जीवसमूह उनके लीला-परिकर हैं। कृष्ण जीवको प्रेमाकर्षणधर्म द्वारा अपनी और खीचते हैं। जीवसमूह अपनी स्वतन्त्र गतिके कारण कृष्णसे पृथक् रहनेकी चेष्टा करते हैं। फज यह होता है कि बलवान आकर्षण जीवोंको खीचकर कृष्णके समीप ला देता है। जुद्र-जुद्र जीवगतियाँ पराभूत होकर भी जीवोंको कृष्णरूप सूर्यके चारों ओर मण्डलाकारमें घुमा रही हैं। यही कृष्णका नित्यरास है। इसमें कृष्णको स्वरूपशक्तिगत सहचरियाँ कृष्णके अत्यन्त निकट होती हैं और साधनसिद्धा सहचरियाँ कुछ दूर अवस्थित होती हैं। कृष्णकी चिन्मयी लीला ही प्रीति धर्मका विशुद्ध परिचय है।

अब प्रश्न होता है कि क्या कृष्ण सभी जीवोंको आकर्षण करते हैं? यदि ऐसा करते हैं, तब क्या कारण है कि सभी जीव कृष्णके प्रति उन्मुख नहीं हैं?

इसका उत्तर यह है कि कृष्ण सचमुच ही सभी जीवोंको आकर्षण कर रहे हैं। परन्तु इसमें एक रहस्य है। जीव दो प्रकारके होते हैं अर्थात् वद्व और मुक्त। मुक्तजीव अपनी प्रीतिका स्पष्ट अनुभव करते हैं तथा उसे क्रियाशील रखते हैं। अतएव मुक्त जीवोंके ऊपर कृष्णाकर्षण स्वभावतः ही अधिक कार्यकारी होता है।

बद्वजीव दो भागोंके विभक्त हैं। जो जीव सम्पूर्णरूपमें कृष्ण-विमुख होते हैं, उनका प्रीतिधर्म अत्यन्त जडगत होकर विकृत होता है। अतएव वे विषय-प्रीतिके सिवा और कुछ भी नहीं जानते। इन्द्रियोंके विषयमें आसक्त होकर वे भोगोंको भोगनेमें दिनरात आसक्त हैं। अपने आपको भूल कर जड़

सुखकी खोजमें ठारसत हैं। पुनः जड़-सुख-समुद्दिकारी जड़ीय विज्ञानका आदर कर पर्थिव पूजामें निरत रहते हैं। 'आत्मा कुछ नहीं है, आत्म चिन्तन निर भ्रम है, आत्मोन्नति-चेष्टा केवल मानसिक दुश्चिन्ता है—इत्यादि प्रलाप वाक्योंसे अपनेको निरन्तर ठग रहते हैं। कोई-कोई स्वर्ग सुखके लिये नाना प्रकारके कर्मोंका अनुष्ठान करके आत्म जगतके सुखसे चिर-वंचित रह जाते हैं।

बहुजीवोंमें कोई-कोई जीव विवेक और वैराग्य-सम्पन्न होते हैं। इस श्रेणीके जीव आत्म-विषयमें अद्वालु होते हैं। इस अद्वाके बल पर ये चित जगत्के सूर्य स्वरूप कृष्णके शुद्धाकरणको किंचित परिमाणमें अनुभव करते हैं तथा कृष्णके प्रति कुछ-कुछ आकृष्ट भी होते हैं। ये लोग नाना प्रकारकी सांसारिक, वैज्ञानिक और परमाथिक चेष्टाओंमें निरत रहने पर भी कृष्णसंग-सुखका उपभोग करते हैं। श्रीचण्डी-दासने इनके भावोंका बहा ही सजीव चित्र खीचा है—

कानु जे जीवन, जाति प्राणधन,  
ए दुटी नयनेर तारा ।  
हियार मफारे, परान पुतजि,  
निमिले निमिल हारा ॥  
तोरा कुलवती भज निज पति,  
यार मने येवा लय ।  
भाविया देखिनु श्याम-बंधु दिने  
आर केह मोर नय ॥  
कि आर बुझाओ धरम-करम,  
मन स्वतन्त्री नय ।  
कुलवत हैला पिरीति-आरति  
आर कार जानि हय ॥  
जे मोर करम कपाले आलिला  
विधि मिलाहला लाय ।  
तोरा कुलवती भज निज पति,  
यार घरे कुल लहै ॥  
गुरु दुरजन, बले कुवचन,  
से मोर चन्दन-चुया ।

श्याम अनुरागे ए तनु वेचिनु  
तिल-तुलसी दिया ॥  
परसी दुर्जन बले कुवचन,  
ना जाव से लोक, पाहा ।  
चरणोदासे कय कानुर पिरीति  
जाति-कुल शोक छाडा ॥

जीव इस संसारमें जडाभिमानके कारण अपने स्वरूपको भूल गया है। यहाँ पर वह नाना प्रकारका सम्बन्ध जोड़कर अनेक लोगोंके साथ नाना प्रकारका व्यवहार कर रहा है। उसने मन-बुद्धि-आहंकार और चित् द्वारा निमित लिंग शरीरमें आत्मबुद्धि कल्पित कर रखी है। इस लिंग शरीरके सम्बन्धसे वह मनो-विज्ञान और पदार्थ विज्ञानको आदर कर उसे अपनी सम्पत्ति मान कर भ्रान्त हो पड़ा है। पुनः पंचभूतके द्वारा बने स्थूल देहमें 'मैं' की बुद्धि कर मैं ब्राह्मण हूँ, मैं इसाई हूँ, मैं बौद्ध हूँ—ऐसा भूमिमान करता है। कभी जन्मता है, तो कभी मरता है। कभी आनन्दसे फूला नहीं समाता, तो कभी दुःख से जर्जर हो पड़ता है। धन्य है यह परिवर्तन ! और धन्य है यह मायाका रंग ! कभी पुरुष होकर एक स्त्रीके साथ विवाह कर रहा है, तो कभी स्त्री होकर एक पुरुषके साथ विवाहकर एक विराट संसार कर रहा है। संसारमें आकर गुरुवर्गकी सेवा करता है, अपने आश्रितजनोंका पालन करता है, सरकारसे भयमीत रहता है एवं शत्रुसे घृणा करता है। कभी कुलबधू घनकर बड़ी ही शमिली हो पड़ता है और लोकनिन्दा से छुई-मुईकी तरह काँपता है। इस प्रकार मायाके चक्करमें पड़ कर जीव नाना प्रकारके भूठ-मूठके सम्बन्ध जोड़कर अपने वास्तविक स्वरूपगत परिचय-से बहुत ही दूर जा पड़ा है तथा भयानक दुर्दशा भोग करता है। संसारकी कृतिपय आरोपित विधियोंको अझीकार कर एक दूसरेको अपना स्वामी मान कर अपने नित्यपति श्रीकृष्णको सम्पूर्णरूपसे भूला हुआ है।

यहाँ पर श्रीकृष्णके सम्बन्धमें एक भाव पैदा

होता है। श्रीमन्महाप्रभुजीने उम भावको अपने स्वरचित एक श्लोकमें इस प्रकार व्यक्त किया है—  
परम्परासनिनी नारी व्यग्रापि गृहकर्म्मु ।  
तमेवास्वादयत्यन्तंवसङ्गरसायनम् ॥

( चै. च. म. ११२१ )

किसी पर-पुरुषमें आसक्त रमणी गृहके कर्मोंमें व्यग्र (संलग्न) रहकर भी नये नये संगरसका आस्तादन करती रहती है।

संसारकी विधियोंमें बँधे हुए जीवकी श्रीकृष्णमें विशुद्ध प्रीति उदय होनेसे पूर्व इसी प्रकारका पूर्वराग होता है। धीरे-धीरे अभिसार और मिलन होता है। श्रीकृष्णतत्त्वका विषय अवण होने पर, श्रीकृष्णके गुणानुवादका अवण होने पर, उन विचित्र सचिचदानन्द मूर्चिका चित्र दर्शन करनेसे, उनकी आकर्षणीशक्तिका स्मरण करनेसे तथा बंशीनाद अवण करनेसे पूर्वराग उदय होता है। जिनमें पूर्वराग उदय हो जाता है, उनका स्वजातियाशययुक्त सहचरियोंकी सहायतासे सचिचदानन्द पुरुषके साथ मिलन होता है। क्रमशः सचिचदानन्द पुरुषके साथ प्रीति सुट्ट हो जाती है।

चिउजगतरूप ब्रजधाममें सचिचदानन्द लीला नित्य है। जीव चित्तकृण है, अतएव वह उस लीला का अधिकारी है। मायावद्ध होने पर जीवके चित्त स्वरूपका परिचय जिस प्रकार जिंग और स्थूल शरीरमें भ्रान्तरूपसे उदय हुआ है, उसी प्रकार चित्त स्वभावरूप विशुद्ध कृष्ण-प्रीति भी जड़-विज्ञान-प्रीति या स्थूल-विषय-प्रीतिके रूपमें भ्रान्तरूपमें उदित है। अतएव मांसगत प्रीति या मानस भावगत प्रीति—शुद्ध प्रीतिका विकार मात्र है। वह प्रीति नहीं है। अपना स्वरूप-भूलजानेके कारण जीव इनको ही प्रीति कहता है। एक आत्माकी दूसरी आत्मामें जो अनुरक्ति होती है, वही 'प्रीति' शब्दका यथार्थ अर्थ है। वृहदारण्यक ( ४४५६ ) में कहा गया है—

न वा अरे पत्युः कामाय पतिः प्रियो भवति आत्मनस्तु कामाय पतिः प्रियो भवति । (इत्युपकम्य)  
न वा अरे सर्वस्य कामाय सर्वं प्रियं भवति आत्म-

नस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवति । आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यो मैत्रैर्यात्मनि खलु अरे हष्टे श्रुते मते विज्ञात इदं सर्वं विदितमिति ।

याज्ञवल्क्यकी पत्नि मैत्रेयी जड़ जगत तथा सूक्ष्म जगतसे विरक्त होकर अपने पतिके पास गयी और सदुपदेशके लिये प्रार्थना की। याज्ञवल्क्यने कहा कि—मैत्रेयी ! इस संसारमें पत्नि अपने पतिको सुख प्रदान करनेके लिये उससे प्रीति नहीं करती, बल्कि अपने भौतिक सुखके लिये ही वह पतिको प्यार करती है। खोके सुखके लिये खी पतिकी प्रिया नहीं होती, परन्तु पति अपने सुखके लिये ही खीमे प्रीति करता है। इसी प्रकार पति, पुत्र और धन आदिके प्रति जो प्रीति होती है, वह केवल कपट प्रीति होती है। तू इस कपटताका परित्याग कर और जो सबके नित्य प्रिय वस्तु है, जो आत्माके आत्मा है, एकमात्र उन भागवान्की प्रीतिके लिये ही उनकी आराधना कर, उनके दर्शन कर, उनकी कथाएँ श्रवण कर, उनका अवण कर और उनका ही ध्यान कर। मैत्रेयी ! उनको जाननेसे सब कुछ जानना हो जाता है, सबका ज्ञान हो जाता है। उससे प्रीति करनेसे सबसे प्रीति करनी हो जाती है।' इस परम प्रामाणिक वेद वाणियोंका तात्पर्य यह है कि स्थूल और और लिंगमय इस जड़ जगतमें प्रेम नहीं है। यहाँ जो कुछ प्रेमका आभास दिखलायी पड़ता है, वह केवल आत्माके सम्बन्धसे ही अनुभूत होता है। शुद्धजीव चिन्मय है। अतएव वह आत्मा है। आत्माके प्रति आत्माका जो प्रेम होता है, वही विशुद्ध प्रीति है। वही प्रीति एक मात्र अन्वेषण करने योग्य है। विश्व प्रेम अथवा मनुष्यके प्रति मनुष्यका जो प्रेम होता है, वह केवल आत्म प्रेमका विकारमात्र है। आत्मा और आत्मामें जो प्रेम होता है, वही एकमात्र आदर्श प्रेम है। श्रीमद्भागवतमें कहते हैं—

कृष्णमेनमवेहि त्वमात्मानमविकल्पनाम् ।

( श्रीमद्भा० १०।१४।५५ )

चौसठ महागुणोंसे युक्त श्रीकृष्ण ही निखिल आत्माओंके आत्मा हैं। कृष्णके प्रति जीवका जो प्रेम होता है, वही निरुपाधिक और चरम प्रेम है। जिन्होंने प्रीतिका स्वरूप अन्ना समझे ही मनोविज्ञान और प्रीतिविज्ञान-इति—ऐसा लिखा है, वे चाहे जितनी भी युक्तियाँ वयोंन पेश करें, केवल भस्ममें घी ढालनेके समान व्यर्थ ही परिभ्रम किये हैं।

उससे जगतका कोई हित होना तो दूर रहे, अधिक-  
तर अहित ही हुआ है और होगा। भाइयों ! दांभिक  
व्यक्तियोंके शब्द-जालसे बचकर शुद्ध आत्मरति और  
आत्मक्रीड़ होकर निरुपाधिक प्रीतितत्त्वका अनुभव  
कीजिये और जीव-स्वभावको परमोज्ज्वल बनाइये।

—ॐ विश्वराम श्रीमद्भक्ति विनोद ठाकुर

## उपनिषद्-वाणी

### मुण्डक (२)

महर्षि अंगिरा कहते हैं—जिस प्रकार प्रज्ज्वलित अग्निसे उसीके जैसे रूप-रंगवाली हजारों चिनगारियाँ निकलती हैं, उसी प्रकार परम पुरुष अविनाशी ब्रह्म-से सष्टिकालमें अनन्त मूर्त-अमूर्त पदार्थ प्रकाशित होते हैं और प्रलयकालमें उन्होंमें विलीन हो जाते हैं। वे दिव्य परमपुरुष अमूर्त हैं अर्थात् स्थूल ( प्राकृत ) आकार रहित हैं, वे जगत्के भीतर और बाहर सर्वत्र वर्तमान हैं। वे जन्मरहित हैं। उनके प्राकृत प्राण, मन और इन्द्रियाँ नहीं हैं। परन्तु वे इन सबके बिना ही सब कुछ करनेमें समर्थ हैं। क्योंकि उपनिषदोंमें कहीं-कहीं उनके सम्बन्धमें कहा गया है कि वे पाणि-पाद आदिसे रहित हैं; परन्तु तेज चल सकते हैं और प्रहृण कर सकते हैं; अतएव वे प्राकृत जगत्से विलक्षण इन्द्रियोंसे युक्त हैं। जीवात्मासे वे सर्वशक्ति-मान परमेश्वर अत्यन्त अेष्ट हैं। इन परमेश्वरसे ही प्राण, मन, सम्पूर्ण इन्द्रियाँ, आकाश, वायु, तेज, जल और सम्पूर्ण प्राणियोंको धारण करनेवाली पृथ्वी—ये पाँचों महाभूत, सब-के-सब उत्पन्न होते हैं।

यह प्रत्यक्ष दिखायी देनेवाला जगत् उनका विराट रूप माना गया है। शुलोक ( अग्निलोक ) उनका मस्तक है, सूर्य और चन्द्रमा दोनों नेत्र हैं, समस्त दिशाएँ कान हैं, छन्द और ऋचाओंके रूपमें विस्तृत

चारों वेद उनकी वाणी है, वायु प्राण है, सम्पूर्ण चराचर जगत् हृदय है, पृथ्वी उनके पैर हैं। यही परब्रह्म परमेश्वर सबके अन्तर्यामी हैं।

उन्हीं परमब्रह्म परमेश्वरसे जगत् उत्पन्न होता है। परन्तु सब समय ( प्रत्येक बार ) एक ही प्रकारसे सृष्टि होती हो—ऐसा नियम नहीं है। वे जब जैसा संकल्प करते हैं, उसी प्रकार उसी क्रमसे जगतकी सृष्टि होती है। उन परमेश्वरकी अचिन्त्य शक्तिके एक अंशसे अग्नि-तत्त्व उत्पन्न हुआ है। सूर्य उसकी समिधा ( ईंधन ) स्वरूप हैं। अग्निसे चन्द्रमा उत्पन्न होते हैं; चन्द्रमासे मेघ और मेघसे वर्षा द्वारा पृथ्वी-में नाना प्रकारकी औषधियाँ उत्पन्न होती हैं। उन औषधियोंके भक्षणसे उत्पन्न हुए वीर्यको जब पुरुष अपनी जातिकी स्त्रीमें सिंचन करता है, तब उससे संतान उत्पन्न होती है। इस प्रकार परमेश्वरसे नाना प्रकारके चराचर प्राणियोंके शरीर आदिकी उत्पत्ति हुई है।

तत्पश्चात् सम्पूर्ण प्राणियोंकी रक्षा और पालन-पोषणके लिये सब प्रकारके यज्ञ, यज्ञकी विधि और उनका फल, सब कुछ उस परमेश्वरसे ही प्रकाशित होता है। उनसे ही वसु, रुद्र आदि देवता लोग, साध्यगण, मनुष्य और पशु-पक्षी आदि सब प्राणी

उत्पन्न हुए हैं। उनसे ही सबके जीवनरूप प्राण और प्राणियोंके आहार रूप धान, जौ आदि अनेक प्रकार के अन्न भी उत्पन्न हुए हैं। उन्हींसे तप, अड़ा, सत्य और ब्रह्मचर्य आदि प्रकट हुए हैं तथा यज्ञादि कर्म करनेकी विधि भी उन परमेश्वरसे ही प्रकट हुई है। उन्हींसे सात प्राण अर्थात्-त्वचा, कान, नेत्र, रसना, ग्राण तथा वाणी एवं मन और इनकी क्रिया स्पर्श करना, सुनना, देखना, स्वाद लेना, सूँधना, बोलना और मनन करना इस प्रकार सातवृत्तियाँ अर्थात् विषय महण करनेवाली शक्तियाँ; उन इन्द्रियोंकी विषयरूप सात समिधाएँ, सात प्रकारका हवन अर्थात् वाया विषयरूप समिधाओंका इन्द्रियरूप अग्नियोंमें निचेपरूप क्रिया और इन इन्द्रियोंमें वासस्थानरूप सात लोक, जिनमें रह कर ये इन्द्रियरूप सात प्राण अपना कार्य करते हैं, निद्राके समय मनके साथ एक होकर हृदयरूप शुद्धामें शयन करनेवाले ये सात-सातके समुदाय परमेश्वरके द्वारा ही समस्त प्राणियोंमें स्थापित किये गये हैं। उन्हीं परमेश्वरसे सात समुद्र, समस्त पर्वत और नदियाँ उत्पन्न हुई हैं।

इन परमेश्वरसे सबकी उत्पत्ति होनेके कारण सब उन्हींका रूप है। जो व्यक्ति सबके हृदय-गुफामें अवस्थित इन परमेश्वरको जान लेता है, वह अपने हृदय-प्रन्थीको भेद कर अग्र और संशयरहित होकर परमेश्वरको प्राप्त हो जाता है।

सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान और सर्वव्यापी परमेश्वर—प्रकाशस्वरूप हैं। समस्त प्राणियोंकी हृदयरूप गुहामें छिपे रहनेके कारण उनका नाम गुहाचर है। इन्द्रियोंसे युक्त समस्त प्राणी ही उनमें स्थित हैं। वे ही सबके आश्रय हैं। वे सत्-असत्, कार्य-कारण और प्रकट-अप्रकट स्वरूप हैं। सबके वरण करनेयोग्य और अत्यन्त श्रेष्ठ हैं तथा समस्त प्राणियोंकी बुद्धिवृत्तिके अगोचर अर्थात् अज्ञेय हैं। वे अतिशय प्रकाश-स्वरूप हैं, सूक्ष्मसे सूक्ष्म हैं, बृहत्-से भी बृहत् हैं और समस्त प्राणियोंके आश्रय हैं। समस्त लोक उन्हींमें स्थित हैं। वे परम सत्य, अमृत और अविनाशी तत्त्व

हैं। जिस प्रकार किसी वाणीको लक्ष्य पर छोड़ने से पहले उसकी नोकको तेज किया जाता है, उस पर चढ़े हुए मोरचेको साफ कर चमकीला बनाया जाता है, उसी प्रकार आत्मरूपी वाणीको उपासना द्वारा निर्मल और शुद्ध बना कर प्रणवरूप धनुष पर संधान करना चाहिये। अर्थात् आत्माको प्रणवके उच्चारण और उसके अर्थरूप परमात्माके चिन्तनमें सम्यक प्रकारसे लगाना चाहिये। इसके अनन्तर जैसे धनुषको पूरी शक्तिसे खींच कर वाणीको लक्ष्य पर छोड़ा जाता है, जिससे वह पूरी तरहसे लक्ष्यको बेघ सके, उसी प्रकार अँकार अर्थात् नामके उच्चारण और सुदीर्घकाल तक चिन्तनमें लगानेसे आत्मा अविनाशी परमात्माके समीप पहुँचनेमें समर्थ होती है। यहाँ प्रवण ही धनुष है, जीवात्मा ही वाणी है और परमब्रह्म ही लक्ष्य-स्वरूप हैं। प्रमादरहित तत्परतासे उपासनामें लगा हुआ साधक ही लक्ष्यको बेघ सकता है अर्थात् परमात्माको प्राप्त कर सकता है।

जिन परमब्रह्ममें स्वर्ग, पुण्यी, उनके बीचका सम्पूर्ण आकाश, समस्त प्राण और इन्द्रियोंके सहित मन, बुद्धि और अन्तःकरण आदि सब-के-सब ओत-प्रोत हैं। उन परमात्माको जाननेके लिये दूसरी सब बातोंको—प्राम्यचर्चार्चीको सम्पूर्ण रूपसे छोड़ देना चाहिए। जिस प्रकार रथके पहियेके केन्द्रमें और लगे रहते हैं, उसी प्रकार शरीरकी समस्त नाड़ियाँ जिस हृदय देशमें एकत्र स्थित हैं, उसी हृदयमें परब्रह्म परमात्मा अन्तर्यामी रूपमें स्थित हैं। इस प्रकार परमात्माके ध्यान और अँकारके उच्चारणसे उन परमात्माकी उपलब्धि की जा सकती है।

जो परब्रह्म परमेश्वर सर्वज्ञ हैं, जिनकी ज्ञान शक्ति देश और कालसे बाधित नहीं है, वे परब्रह्म नामक स्थानमें अपने स्व-स्वरूपमें स्थित हैं। वे सबके शरीर और प्राण आदिका नियमन करते हैं एवं हृदय-कमलका आश्रय लेकर रहते हैं। वे मनमें व्याप्त रहनेके कारण 'मनोमय' नामसे प्रसिद्ध हैं। बुद्धिमान

मनुष्य विज्ञान द्वारा उनको भलीभाँति प्रत्यक्ष कर लेते हैं।

कार्य और कारणात्मक परमपुरुषका दर्शन कर लेने पर जीवके हृदयकी प्रवृत्ति खुल जाती है, समस्त प्रकारके संशय दूर हो जाते हैं तथा समस्त शुभाशुभ कर्म नष्ट हो जाते हैं, कर्मफलोंको भोगनेकी वाद्य-शाखाका नहीं होती। वे परम निर्मल निर्विकार अव्यय परमात्मा प्रकाशमय ध्यानमें विराजमान हैं। वे समस्त प्रकाशयुक्त पदार्थके भी प्रकाशक हैं; उन्हें आत्मज्ञानी महात्माजन ही जान सकते हैं। उन स्वप्रकाश परब्रह्म

परमेश्वरके सभीप यह सूर्य नहीं प्रकाशित होता। चन्द्रमा तारागण और विजली भी वहाँ नहीं चमकते। फिर अग्निकी तो बात ही क्या है? क्योंकि प्राकृत जगतमें जो कुछ भी प्रकाशयुक्त तत्व है, वे सब-के-सब उन परमब्रह्म परमेश्वरकी प्रकाश-शक्तिके अंशको पाकर ही प्रकाशित हैं। सारांश यह कि वे सर्व व्यापक और सर्वरूप अर्थात् असृत स्वरूप परमात्मा ही आगेपीछे, बाहर-भीतर, ऊपर-नीचे—सर्वत्र प्रकाशित हैं।

—श्रीदिव्यदस्त्रामी धीमद्भक्तिभूदेव श्रीती महाराज

## भजन विनु बैल विराने हैं हौ

भजन विनु बैल विराने हैं हौ ही।

पाउँ चारि, सिर सींग, गँग मुख, तब कैसैं गुन गैही ॥

चारि पहर दिन चरत-फिरत बन, तऊ न पेट अधैही ।

दूटे कंध अरु फूटी नाकनि, कौ लौं धौं सुम खैही ॥

दुलात् जोतत लकुट बाजिहैं, तूब कहैं मूँड दुरैही ।

सीत, धाम, घन विषति बहुत विधि, भार, तरै मरि जैही ॥

हरि संतन कौ कहौ न मानत, कियौ आपुनी पैही ।

सूरदास' भगवंत भजन विनु, मिथ्या जनम गँवैही ॥

—सूरदास

# श्रीश्रीआचार्यदेवका दीक्षान्त भाषण

[ जगद्गुरुह अविद्यापाद श्रील सरस्वती गोश्वामी 'प्रभुपाद'की विरह-तिथि के अवसर पर ]  
 ( पूर्व-प्रकाशित वर्ष ५, संख्या १०-११, पृष्ठ २४३ के आगे )

## अद्वय-तत्त्वमें अंशका पूर्णत्व

उक्त श्लोकमें 'यज्ञानमद्वयम्' एक बाक्य है। इसके द्वारा वस्तुको 'अद्वयज्ञान'-स्वरूप कहा गया है। 'अद्वय' कहनेसे प्राकृत भेदराहित्य ही समझना होगा। प्राकृत भेद कहनेसे माया या अविद्या द्वारा कल्पित भेदका ही बोध होता है। अद्वयवस्तुमें मायिक या अविद्यागत भेद स्वीकृत नहीं होता। जहाँ द्वितीय-वस्तुको अस्वीकृत कर वस्तुका अद्वयत्व स्वीकृत है, वहाँ द्वितीयरहितका तात्पर्य प्राकृत स्थूलसे रहित है वास्तवमें वह ( वास्तव-वस्तु ) द्वितीयरहित नहीं है। यदि ऐसा न हो, तो परम दार्शनिक मनीषियोंकी चिन्ताधाराओंके तारतम्यकी कुछ भी सार्थकता नहीं रहती। तत्त्व-वस्तु पूर्ण होनेके कारण ही उसमें पूर्ण-अंशकी स्थिति मानी गयी है। मायासे अतीत अंश पूर्णके समान होता है; उसे पूर्णकी अभिव्यक्ति अथवा द्वितीय मूर्ति भी कहा जा सकता है। अतएव अंश-तत्त्व भी पूर्ण माना गया है। इसलिये वैदिक या औपनिषदिक युक्तिके अनुसार हम देख पाते हैं— "पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।" इस वैदिक युक्तिको अस्वीकार करनेसे मनुष्य जातिको नास्तिक होना पड़ेगा। इस स्थल पर लौकिक युक्ति अपनी हार स्वीकार करती है। 'पूर्ण'—एक वस्तु है, उसे तत्त्व कहा जा सकता है। इस पूर्णसे पूर्णको ले लेने पर अवशिष्ट कुछ भी नहीं रहेगा—ऐसी बात नहीं है। बल्कि अविशिष्ट भी पूर्ण ही होता है। इस जगह ध्यान देनेकी बात यह है कि 'पूर्ण'में से 'पूर्ण' प्रहण करेगा कौन? जो पूर्णसे पूर्ण प्रहण करनेवाला है, वह भी 'पूर्ण' ही होगा। जो पूर्णमें से पूर्णको प्रहण करता है, वही 'पूर्ण' अवशिष्ट भी रख छोड़ता है।

शून्यवादी भी इस विचारको सहज ही समझ सकते हैं। प्राकृत विज्ञानमें गणितशास्त्री शून्यमेंसे शून्यको वियोग कर शून्य ही 'शेष' रखते हैं। यदि शून्यवादी गणितज्ञोंकी योग्यता ऐसी है, तब पूर्णवादीके पूर्ण-पुरुषके लिये यह बात कभी भी असंभव नहीं हो सकती। वे भी प्रदीपके हृष्टान्तसे इसको स्पष्ट करते हैं। एक प्रदीपसे अनेकों प्रदीप प्रज्वलित होने पर भी मूल प्रदीपकी कुछ भी हानि नहीं होती एवं जलाये हुए प्रदीप-समूह भी मूल प्रदीपसे किसी अंशमें न्यून नहीं होते। अतएव जलाये गये प्रदीप-समूह अंश होने पर भी पूर्ण एक हैं; अतएव परतत्त्व एक और अद्वय ही है। दर्शकोंकी योग्यतामें एकत्वको ठीक रख करके ही अनेक तारतम्य प्रकाशित हैं।

## परतत्त्वकी त्रिविधि प्रतीतियाँ—(क) ब्रह्म

कुछ दार्शनिकोंने परतत्त्वको निःशक्तिक कल्पना करके उसे 'ब्रह्म' माना है। ब्रह्म—परतत्त्वकी निर्गुण निर्विशेष-निःशक्ति-अवस्था है। यह अवस्था वास्तविक नहीं—काल्पनिक मात्र है। वास्तवमें ब्रह्म वस्तुको वेद-उपनिषद् और वेदान्त-दर्शनमें केवल निःशक्तिक या निर्गुण-निर्विशेष मात्र ही नहीं बतलाया गया है। उपनिषदोंमें कहीं-कहीं ऐसा वर्णन लक्षित होने पर भी वे स्थल या तो पूर्वपक्ष अथवा प्रश्नके रूपमें ही उल्लिखित हुए हैं। ऐसी उक्ति शास्त्रकी व्यतिरेक उक्ति है। वास्तवमें वस्तु ही वस्तु है; अवास्तव-वस्तु वस्तु नहीं है। वस्तुकी काल्पनिक अधिकरणमें सत्ताहीनता ही प्रकाशित होती है। पार्थिव भाषागत मल वस्तु-विकाशके मार्ग में बाधा है। हम इस मलसे अपना पीछा तब तक नहीं छुड़ा सकते, जब तक इस मायिक जगतमें

रहेंगे। अतएव इस विषयमें श्रोतुमंडलीको भाषा-मलको दूर रख कर परतत्त्व अनुशीलन द्वारा अनुभूति के लिये उपदेश है। जो वस्तु अनुभव-सिद्ध है, वह अनेक ज्ञेयोंमें भाषासिद्ध नहीं होती। अर्थात् कुछ अनुभव ऐसे होते हैं, जिनको भाषामें व्यक्त नहीं किया जा सकता है। परतत्त्वके सम्बन्धमें भी यही बात लागू है। चिदनुशीलन द्वारा परतत्त्वका अनुभव किया जा सकता है, परन्तु पार्थिव भाषा उसे व्यक्त करनेमें असमर्थ है। भाव और भाषाका भेद यही पर है। भाषा सर्वदा सम्पूर्ण है। भाषाको भावही अभिव्यक्त कहने पर भी वह उसकी पूर्ण अभिव्यक्त नहीं है। चीजी और मिथीकी मीठासमें क्या अन्तर है—उसे भाषा द्वारा व्यक्त करनेका उपाय नहीं है। उसे तो खाने या खिलानेके द्वारा ही समझा अथवा समझाया जा सकता है। अतएव परतत्त्व अनुभवसिद्ध वस्तु होनेके कारण भाषा और परिभाषा द्वारा व्यक्त करने योग्य वस्तु नहीं है। तथापि भाषामें आंशिक रूपसे अभिव्यक्त करनेकी शक्ति है—इस तथ्यको अस्वीकार भी नहीं किया जा सकता है। जितना व्यक्त होता है, निर्मलरूपमें हो सकता है। परतत्त्वको ब्रह्म कहनेसे एक आंशिक प्रतीतिगत व्यतिरेक सत्ताकी अनुभूति हो सकती है, परन्तु वह परतत्त्व नहीं है। उक्त आंशिक प्रतीतिगत व्यतिरेक सत्ताके द्रष्टा ज्ञानीजन होते हैं। ये अपनी सीमा तक उसे निर्विशेष निःशक्तिक वस्तुके रूप ही में दर्शन करते हैं।

बेदान्त दर्शनमें परतत्त्वको निर्विशेष और निःशक्ति नहीं कहा गया है, बल्कि उसे सर्वशक्तिमान और अप्राकृत सविशेष स्थिर किया गया है। उसे सृष्टि, स्थिति और प्रलयका कर्ता माना गया है। अतएव जिस तत्त्वको परतत्त्व ब्रह्म कहते हैं, वे ब्रह्म सर्वशक्तिमान और सत्तम ब्रह्म हैं। अद्वैतवादियोंके ब्रह्म निःशक्तिक हैं अर्थात् अन्नम ब्रह्म हैं। शक्तिहीन अन्नम ब्रह्मकी उपासनासे जीवका क्या उपकार हो सकता है? बेदान्त दर्शनके द्वितीय सूत्र

से ही अन्नम ब्रह्मकी श्रेष्ठता असिद्ध है। “जन्माण्यस्य-यतः” से ब्रह्मकी शक्तिहीनताका बोध नहीं होता और सांख्यवादियोंके कार्य-कारणवादके भोतरसे अन्नम ब्रह्मकी निर्वृता प्रचुर परिमाणमें प्रकाशित होती है। शास्त्र-युक्तियोंके द्वावमें आचार्य शंकर भी इस तथ्यको स्वीकार करनेके लिये वाध्य हुए हैं।

### परतत्त्वकी त्रिविधि प्रतीतियाँ—(ख) परमात्मा

शंकराचार्यके सिवा किसी भी दार्शनिकने परतत्त्वको निःशक्तिक नहीं बतलाया है। बल्कि कुछ दार्शनिकोंने थोड़ी दूर और आगे बढ़ कर शक्तियुक्त परमात्मनत्त्वको स्वीकार किया है। हम निःशक्तिक ब्रह्मसे सशक्तिक तत्त्वकी श्रेष्ठता उपलब्धि करते हैं। सशक्तिक तत्त्ववादी परमात्माको मायाशक्तियुक्त स्वीकार करते हैं। सांख्य और पातञ्जल दार्शनिक—योगियोंमें यह विचार परिमुक्त है। इसीलिये हम लोग ज्ञानियोंकी अपेक्षा योगियोंकी प्रधानता स्वीकार करते हैं। गीतामें भी इसका प्रमाण मिलता है—“तपस्विभ्योऽविको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः।”

उक्त श्लोकमें तपस्वी, कर्मी और ज्ञानिसे योगी को श्रेष्ठ बतलाया गया है। इनमें भी जो अनन्य चिन्तसे निरन्तर मेरे भजनमें लगा रहता है, वही सर्वश्रेष्ठ योगी है। ओगीतामें भी हम निर्विशेष-निःशक्तिक चिन्तासे सविशेष-स्वशक्तिक चिन्ताकी प्रधानता लक्ष्य करते हैं। कुछ लोग परतत्त्व वस्तुको केवल मायाशक्तिसे युक्त परतत्त्वकी अपेक्षा सर्वशक्तिमान परतत्त्व श्रेष्ठ प्रतीक होता है। जैसा भी हो, ब्रह्मतत्त्व से परमात्म तत्त्वकी श्रेष्ठता प्रत्येक बुद्धिमान मनुष्य स्वीकार करेगे, इसमें संदेहकी कोई बात नहीं है। हम इस सिद्धान्तके पहामें अनेकानेक शास्त्रीय युक्तियाँ पाते हैं।

मायाशक्तिमान परमात्म तत्त्व ही सम्पूर्ण विश्व-के कारण है। अविद्या या मायाशक्तिमत् तत्त्व—परमात्माको विश्वका स्रष्टा नहीं स्वीकार करनेसे

विश्वका प्रकृतत्त्व संभव नहीं होता । शुद्ध दार्शनिक विश्वको मिथ्या नहीं मानते । मायावादी प्राकृत जगत् को मिथ्या प्रमाणित करनेके लिये जितना भी ऊहापोह क्यों न करें, जगत् का आत्यन्तिक मिथ्यात्म स्वीकृत होनेसे वह जीवको चार्वाक जैसा सम्पूर्ण नास्तिक बना देगा । यद्यपि एक मायाशक्तिसे युक्त परमात्म तत्त्व सर्वश्रेष्ठ तत्त्व नहीं है, फिर भी अन्तर्गत्वा हम उसे निःशक्तिक ब्रह्मसे श्रेष्ठ अवश्य स्वीकार करते हैं ।

### मायाके अधीन ईश्वरवाद

वास्तवमें एक शक्तिमत् तत्त्वमें अनेक-शक्तिमत् तत्त्वका वैशिष्ट्य है । फिर अनेक-शक्तिमत् तत्त्वमें अनन्तकरोड़-शक्तिमत् तत्त्वका और भी अधिक महत्व है । सर्वशक्तिमत् तत्त्व इन सबसे बढ़कर है । भगवानकी सर्वशक्तिमत्ताका ऊलेख समस्त शास्त्रोंमें पाया जाता है । सर्वशक्तिमत्ताके प्रभावसे स्वयं भगवान् अनेक विरुद्ध-जातीय क्रियावान् या लोलावान् हैं । माया-शक्तिमान् भगवान् का ऊलेख भी शास्त्रोंमें देखा जाता है । परन्तु मायाशक्ति कहनेसे प्राकृत शक्ति-विशिष्ट या जडाशक्तिसे युक्त तत्त्वका बोध होने पर भी चेतनशक्ति नामक एक और भी दूसरी शक्तिका ऊलेख देखा जाता है । 'माया'-शब्दसे माहामाया और योगमाया दोनोंका बोध होता है । योगमायासे युक्त परतत्त्व ही सर्वशक्तिमान् कहा जाता है । योगमायामें अघटन-घटनपटीयसी क्रिया लच्य की जाती है । इसलिये भगवान् मायाके अधीश्वर हैं—मायाके अधीन नहीं । निःशक्तिक-वादी ब्रह्मको मायाके अधीन लाकर काल्पनिक ईश्वर की सृष्टि किये हुए हैं । युक्तिके लिये उस्त्रेणीके ईश्वरको मायाके अधीन स्वीकार कर लेने पर भी, सशक्तिक ईश्वरवादियोंके मायाशक्तिके अधीश्वर स्वरूप जो ईश्वर हैं, वे पूर्वोक्त शक्तिरहित ईश्वरसे श्रेष्ठ हैं । ईश्वरको मायाधीन तत्त्व स्वीकार करनेसे उनके प्रति बड़ा अपराध करना हो जाता है—उनको अत्यन्त तुच्छ मानना हो जाता है । यदि ईश्वरको

मायाधीन माना जाता है, तब तो ईश्वरके लिये भी साधन करना आवश्यक है—यह बात भी स्वीकार करनी पड़ेगी । क्योंकि बिना साधनके वे मायाके बन्धनसे कैसे छुटकारा पा सकते हैं ? यदि जीवको माया-बन्धनसे छुटकारा पानेके लिये ज्ञान-साधनकी आवश्यकता है, जैसा कि मायावादी कहते हैं, तब तो उन्हें यह बात भी स्वीकार करनी पड़ेगी कि ईश्वरको भी माया या अविद्यासे छुटकारा पानेके लिये ज्ञानरूपी साधनकी आवश्यकता होती है । भारतीय आस्तिक सम्प्रदाय कदापि ऐसा स्वीकार नहीं कर सकता है ।

### परतत्त्वकी त्रिविधि प्रतीतियाँ—(ग) भगवान्

सर्वशक्तिमान् परतत्त्वको 'भगवान्' कहा गया है । पूर्वोक्त श्रीमद्भागवतके श्लोकमें देखिये, उसमें तत्त्ववस्तुको अन्तमें भगवान् ही कहा गया है । अर्थात् ब्रह्म निःशक्तिक हैं, परमात्मा मायाशक्ति से युक्त हैं और भगवान् सर्वशक्तिमान् हैं; इस शक्तिके तारतम्यसे ही भगवत्ताका तारतम्य वैष्णव आचार्योंने दिखलाया है । यह सर्वशक्तिमत्तत्त्व इन्द्रिय-ज्ञानसे परे होनेके कारण शास्त्रमें उसे अधोक्षज तत्त्व कहा गया है । श्रीश्रीभुपादजीने इस विषयमें एक नया विचार दार्शनिक जगत्को प्रदान किया है । इन्होंने बतलाया है कि—'अधोक्षज विचार' उन्नत होने पर अप्राकृत-विचारके रूपमें पर्याप्तिसंत हो जाता है । अतएव अधोक्षज भगवानकी उपासना द्वारा चित्त उन्नत होने पर और माया मोह आदि अविद्या-चेष्टासे छुटकारा मिलने पर 'अप्राकृत' भगवत्तत्त्वकी उपलब्धि की जा सकती है । भारतवर्षमें अनेको वैष्णव सम्प्रदाय हैं । वे सभी न्यूनाधिक रूपमें अधोक्षज-तत्त्वकी सेवा करते हैं । क्योंकि अधोक्षज-तत्त्व ही सर्वशक्तिमान् तत्त्व हैं । फिर भी अनेको वैष्णव सम्प्रदायोंमें श्रीमद्भागवतके 'कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्'—इस वचनकी उपलब्धि नहीं दिखायी देती है । साधारण वैष्णवजन विश्वको अधोक्षज तत्त्वका शरीर मानते हैं । जिन सम्प्रदायोंके ऊपर श्रीमद्-

भगवतका प्रभाव है, उनमें से भी अनेकों ऐसे हैं, जिन्होंने 'कुण्ठस्तु भगवान् स्वयम्' मंत्रके 'स्वयं'—शब्दका चथाथ तात्पर्य उपलब्धि नहीं कर सके हैं। उनकी तो बात ही क्या है, ब्रह्मा और शिव आदि अेषु देवताओंमें इश्वर-उपासनाका तारतम्य लक्षित होने पर भी उनमें अधोक्षज-तत्त्वकी सेवा ही अधिक मात्रामें परिमिट है। शास्त्रोंमें देवताओंकी कृष्ण-उपासनाका उल्लेख रहने पर भी सूदम रूपसे विचार करने पर ऐसा पता चलता है कि उनके हृदयमें कृष्ण की पूर्ण अभिभ्यक्तिका अभाव है। 'स्वयं'—शब्द द्वारा अवतारी पुरुषको लक्ष्य किया गया है। शक्तिमान और सर्वशक्तिमान—सभी भगवत् तत्त्व कृष्णने आविर्भूत हुए हैं। इसलिये श्रीकृष्णको अवतारी पुरुष कहा जाता है। श्रीकृष्णने देवताओं और अेषु प्राणियोंको उनकी आराधनासे प्रसन्न होकर कहीं, पद्मुजरूपमें, वही चतुर्भुजरूपमें, कहीं द्विमुजरूपमें, कहीं भुजारहित या पादरहित अपाणि-पादरूपमें दर्शन दिये हैं। इस प्रत्यंगमें समस्त अवतारों के अवतारी श्रीचैतन्य महाप्रभुकी शिक्षा ही सर्वतोःभावेन अनुशीलनीय है।

### श्रीकृष्ण अचिन्त्य-शक्तिमान् भगवान् हैं

श्रीमन्महाप्रभुने कहा है—सर्वशक्तिमानकी सीमा निर्धारित हो सकती है; परन्तु अचिन्त्य-शक्तिमानकी सीमा निर्धारित नहीं की जा सकती है। अतएव 'अचिन्त्य शक्तिमान भगवान्' कहनेसे एकमात्र कृष्णका ही बोध होता है। 'सर्वशक्ति'—इस शब्द द्वारा समस्त शक्तियों या अनन्त शक्तियोंको समझा जा सकता है। एवं अतिमत्यं महापुरुषोंकी अतिमत्यं अधोक्षज वुद्धि द्वारा उन शक्तियोंकी चिन्ताकी जा सकती है। परन्तु 'अचिन्त्य शक्ति' कहनेसे जो सर्वभौम अप्राकृत विचार उपस्थित होता है, उसीसे श्रीकृष्णचन्द्र 'अचिन्त्यशक्तिमान्' भगवान् निर्दिष्ट होते हैं। यह विचार पहले कभी भी नहीं दिखलाया गया था। स्वयं अचिन्त्य-शक्तिमान—श्रीगौरहरि ने इस अपूर्व रहस्यका उद्घाटन अपने अत्यन्त प्रिय-

जनोंके निकट किया है। इसीलिये सर्वोन्नत भक्तोंने "अनग्नितचरी चिरान् करुणायावतीर्णः कलौ" इत्यादि श्लोकों द्वारा उन अचिन्त्यशक्तिमान् तत्त्व श्रीकृष्ण-चैतन्य महाप्रभुका स्तव किया है। अचिन्त्य-पुरुष ही अचिन्त्य-तत्त्ववा पता दे सकते हैं। असीम-तत्त्व ही असीमकी धारणा देनेमें समर्थ हैं। चिन्त्य पदार्थ चिन्ता में आनेवाले पदार्थोंकी ही धारणा करा सकते हैं, उनसे अचिन्त्यकी धारणा होना असंभव है। इसीलिये श्रीमन्महाप्रभुजीने वेदान्तके विचारसे अचिन्त्यभेद-तत्त्वका प्रकाश किया है।

श्रीमन्महाप्रभु स्वयं अचिन्त्य और असीम तत्त्व होनेके कारण उनके द्वारा असीम और अचिन्त्यतत्त्व का प्रकाश संभव हुआ है। शब्द जिनको मन और वाणीके अगोचर बतलाते हैं, भला उन अचिन्त्य तत्त्वका प्रकाश कौन कर सकता है? इस विषयमें शास्त्रोंने अपनी असमर्थता बतलायी है—“यतो वाचो निवर्त्तते अप्राप्य मनसा सह! ” दूसरी जगह—“अवङ्-मनस-गोचरः! ” पुनः कहा है—‘नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न वहुना अतेन’ इत्यादि। वेदान्त दर्शनमें भी कहते हैं—“तक्तिप्रतिष्ठानान्! ” ये समस्त वाक्यसमूह सर्वशक्तिमान या बहुशक्तिमान भगवानके सम्बन्धमें नहीं कहे गये हैं। ये केवल अचिन्त्यशक्तिमान भगवानके सम्बन्धमें भी प्रयोज्य हैं। तत्त्व वस्तुको जहाँ मन और वाणीसे अगोचर कहा गया है, वहाँ उस तत्त्व-वस्तुसे अप्राकृत अचिन्त्य तत्त्वको ही लक्ष्य किया गया है। तार्किकोंके मतानुसार इसे स्वविरोध-वाक्य माने जाने पर भी अचिन्त्य-तत्त्वके सम्बन्धमें स्वविरोध-दोष कार्यकारी नहीं है। मैंने पहले ही बतलाया है कि भाषाका मल अनुभवसिद्ध वस्तुको स्वर्ण नहीं कर सकता। वाणी द्वारा वस्तुका निर्देशमात्र दिया जाता है। साक्षात्कार तो केवल अनुभव सिद्ध है। ‘अवङ्-मनस-गोचरः’ यह एक वाक्य ( वाणी ) है। इस वाणीसे जिस वस्तुका निर्देश किया जा रहा है, वह उक्त वाणी द्वारा व्यक्त हुई। परन्तु वह वस्तु इस प्रकारसे व्यक्त

हुई कि केवलमात्र एक दिक् निर्णयके सिवा कोई पूर्णनुभूति पैदा नहीं हो सकी। केवल दिशाका निर्देश देकर वह वाणी शान्त हो गयी। इसके छारा 'नेति'-'नेति' वादका पच समर्थन नहीं होता। क्योंकि पार्थिव वस्तुके प्रति लक्ष्य रखनेके कारण एक प्रकारके विचार द्वारा पार्थिव विचारका निषेध किया जा रहा है अर्थात् इति ( भौतिक पदार्थ ) के प्रति तीव्र उष्टि रख कर उस इति-वस्तुको अस्वीकार करनेके लिये कहा जा रहा है। परन्तु 'अचिन्त्यः खलु ये भावाः' इस वाक्यके द्वारा मानसिक चिन्तासे उत्थन बचन-समूहको अस्वीकार करनेका उपदेश नहीं दिया जा रहा है; अर्थात् मानसिक अनुभूतिको स्वीकार करके भी उसे तुच्छ बतला कर साधकको अप्राकृत अनुभूतिकी दिशामें अप्रसर कराया जा रहा है। अतएव दोनों एक नहीं हैं।

### श्रीकृष्णकी अचिन्त्य लीला

ऐतिहासिक व्यक्ति अचिन्त्यशक्तिमत्ता समझनेमें असमर्थ होते हैं। जड़ काव्यके रसको और ऐतिहासिकों की चिन्ताधारामें 'अचिन्त्य' नामक कोई व्यापार स्वीकृत नहीं है। इसलिये वे लोग शास्त्रीय-विचारधारामें प्रवेश करनेमें नितांत पराङ् मुख होते हैं। श्रीकृष्णचन्द्रकी कृष्णलीलामें जो अचिन्त्यशक्तिमत्ता प्रकाशित हुई हैं, उसकी साधारण दार्शनिकजन बिलकुल ही उपलब्ध नहीं कर सके हैं। ये लोग कृष्णलीलाकी अचिन्त्य-शक्तिमत्ताकी उपलब्ध करने में असमर्थ होने पर भी अपनी अयोग्यताको छिपाने के लिये कृष्णलीलाके प्रति कटाक्ष किया करते हैं। चिन्त्यकी धारणा लेकर अचिन्त्य तत्त्वकी ओर अप्रसर होनेसे विफल मनोरथ होकर लौटना ही पड़ेगा। द्वारकामें श्रीकृष्णने एक ही दिन एक ही समय एक ही मुहुर्तमें अलग-अलग सोलह हजार महलोंमें सोलह हजार महिलाओंसे विवाह किये थे। यह सर्वशक्तिमत्ताका प्रभाव नहीं है—अचिन्त्य शक्तिका प्रभाव है। रासस्थलीमें एक ही श्रीकृष्ण रासस्थलीकी गोपियोंकी जितनी संख्या थी, उतनी

ही संख्यामें प्रकाशित हुए थे—यह अचिन्त्य शक्तिका प्रभाव है। साधारण दार्शनिक इसे भले ही नहीं समझें, परन्तु अचिन्त्यशक्तिमत् तत्त्व श्रीकृष्ण-चैतन्य महाप्रभुकी कृपासे उनके सर्वोत्तम भक्तवत्त तथा श्रीश्रीप्रभुपाद स्वयं इस तत्त्वको हृदयज्ञम कर हमें शिक्षा देनेमें समर्थ हुए हैं।

### श्रीकृष्णलीला नित्य है

गोस्वामी महाजनोंने कृष्णकी प्रत्येक लीलाको नित्य बतलाया है। नित्य कहनेसे सदा-सर्वदा वर्तमान या नित्यकाल वर्तमान रहनेका बोध होता है। इस नित्य शब्दकी प्रतीतिके सम्बन्धमें विभिन्न दार्शनिकोंने विभिन्न प्रकारके विचार दिखलाये हैं। उनमें उद्यवहारिक नित्यत्व, परमार्थिक नित्यत्व, आपेक्षिक नित्यत्व, प्रात्यहिक या दैनन्दिन नित्यत्व, अवश्य कर्तव्यरूप नित्यत्व, कालगत नित्यत्व और मायिक नित्यत्व आदि आनेकों नित्यत्वकी बातें सुनी जाती हैं। परन्तु गोस्वामी महाजनोंने जिस नित्यत्वकी बातें बतलायी हैं, उसमें भूत और भविष्य आदि खण्डकालका प्रवेश नहीं है। अतएव नित्य कहनेसे नित्य वर्तमानका ही बोध होता है—यही गोस्वामियोंका विचार है। श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामीने लिखा है—‘अद्यापि ह सेह लीला करे गोराराय। कौन-कौन भाग्यवान देखिवारे पाय ॥’

अर्थात् आज भी गौरहरि वही नित्यलीला कर रहे हैं और उसे कोई विरला सौभाग्यवान ही देख पाता है। लीलाकी नित्यताका यही उदाहरण है। कहीं-कहीं नित्यवस्तु कहनेके बदले 'कैवल्य' कहा गया है। अर्थात् 'कैवल्य'-शब्दके व्युत्पत्तिगत धर्म से ही 'कैवल्य'-शब्दकी सृष्टि हुई है। ब्रह्मसूत्र या वेदान्त दर्शनमें 'नित्य' अर्थमें ही 'कैवल्य' शब्दका प्रयोग हुआ है। श्रीवेदव्यासने ब्रह्मसूत्रमें लिखा है—“लोकवत्तु लीलाकैवल्यम् ।” लीला कैवल्यस्वरूप अर्थात् नित्य है। 'कैवल्य'-शब्दका कोई दूसरा अर्थ करनेसे, वह नरकके तुल्य हो पड़ता है। लोकिकके समान दीख पड़ने पर लीला

नित्य है तथा वह भगवानके साथ केवलताको प्राप्त अर्थात् एकताको प्राप्त हुई होती है। अर्थात् कृष्ण जैसे नित्य सत्य हैं, लौकिक लीला भी उसी प्रकार नित्य है—नित्यलीला लौकिक ज्ञेयमें आविर्भूत होनेके कारण लौकिक जैसी दिखायी पड़ती है। अलौकिककी छाया ही लौकिक है—समानता होने पर भी दोनों एक नहीं हैं। बहुतसे दार्शनिकोंने त्रृष्णके प्रारंभमें वस्तुका एकत्व या कैवल्य-विचार दिखलाया है। वह कैवल्य या एकत्व बहुत्वका ही सूचक है। जैसे एक राजा कहनेसे उसके अमात्यवर्ग, सैन्य-सामन्त और प्रजा-समूह आदि सबके साथ एक व्यक्ति का बोध होता है। उसी प्रकार परतत्व एक है, 'एक' कहने से बहुत्वकी स्थितिका ही बोध होता है। पाश्चात्य दार्शनिकोंका भी कथन है—*Diversity in unity*। गणितशास्त्रमें जो 'एक' की कल्पना है, वह बहुत्वका सहायक मात्र है। क्योंकि हठ या अट्ठ जगत्में 'एक' नामक किसी भी वस्तुकी स्थिति नहीं है। यह 'एक' काल्पनिक संख्या है। इस कल्पित 'एक' संख्या द्वारा बहुत्व प्रमाणित और स्थापित हुआ करता है। उपनिषद भी ढंकेकी चोट कहते हैं—“एकोऽहं बहुश्याम”—मैं एक वस्तु ही अनेक हूँ।

### जीवोंका नित्यत्व

एकके भीतर बहुत्वका होना ही अचिन्त्य-शक्ति-मत्ताका प्रभाव है। इसलिये जीवसमूह नित्य और

समानतन होकर भी उसी परब्रह्ममें स्थित हैं। जीव नित्य होनेके कारण ही ब्रह्ममें स्थित हैं। अनित्य होने पर जीव ब्रह्ममें कदापि अवस्थित नहीं रह सकते थे। अथवा ब्रह्मको प्राप्त नहीं हो सकते थे। जीव भगवान् के अंश हैं—अत्यन्त जुद्रसे भी जुद्र अंश हैं। भगवानका अंश कहनेसे कोई यह न समझे कि जीव भगवत् वस्तुके अंश हैं, वरन् इसका तात्पर्य वस्तुकी शक्तिका अंशसे है। जीव वस्तु-शक्ति का अंश है। वस्तुका अंश कहनेसे उसे वस्तुके समान अधिकार दे दिया जाता है। परन्तु वस्तुशक्तिका अंश वस्तुके समान नहीं होता। मैंने पहले ही कहा है कि पूर्ण वस्तुका अंश भी पूर्ण होता है। इसके सम्बन्धमें लौकिक दृष्टान्त और शास्त्रीय निर्देश दिये गये हैं। जीव-समूह उस श्रेणीके अंश नहीं हैं। जीवमात्र ही शक्ति तत्त्व है। शक्ति शक्तिमानमें स्थित होती है। कोई भी शक्ति शक्तिमानके बिना स्वतंत्र रूपमें नहीं रह सकती। “शक्ति-शक्तिमतोर-भेदः”—यह दार्शनिक वचन ही उक्त सिद्धान्तका प्रमाण है। शक्ति-शक्तिमान स्थित रहने पर भी शक्ति-शक्तिमानका भेद वास्तवमें स्वतः सिद्ध है। दोनोंकी कोई पृथक स्थिति नहीं है, इसीलिये शक्ति और शक्तिमानको अभेद कहा जाता है। अतएव जीव कदापि ब्रह्म नहीं है, मनुष्य कभी भी भगवान् नहीं हो सकता है।

## जैव-धर्म

### बत्तीसवां अध्याय

#### मधुर-रस विचार

रोतका समय है। ब्रजनाथ अपना भजन समाप्त कर हरिनामकी माला रख कर सो गये हैं। विजय-कुमार प्रसाद सेवा कर विस्तरे पर लेटे हुए हैं। नीर नहीं आ रही है। कुछ सोच रहे हैं। पहले उनकी

धारणा थी कि गोलोक एक पृथक स्थान है। परन्तु अब वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि गोलोक और गोकुल अभिन्न हैं। गोलोकमें भी परकीय रसका मूल है; परन्तु कृष्ण उपपत्ति कैसे हो सकते हैं?—यह

बात उनके समझमें नहीं आ रही है। उन्होंने सोचा —कृष्ण परम पदार्थ है। शक्ति और शक्तिमान अभेद हैं। किर भी यदि शक्तिको शक्तिमानसे पृथक् कर भी लिया जाय तो शक्तिको परोद्धा और कृष्णको उपपति कैसे कहा जा सकता है? एक बार सोचा, कल श्रीगुरुदेवसे प्रश्न कर इस संदेहको दूर कर लूँगा। किर सोचा कि गोलोकके सम्बन्धमें श्रीगुरुदेवसे कुछ भी पूछना उचित नहीं है। किर भी सन्देह दूर करना तो आवश्यक है। इस प्रकार सोचते-सोचते उन्हें नींद आ गयी। निद्रामें उन्होंने स्वप्न देखा, उनके गुरुदेव उनके सामने हैं और उनसे विजयकुमार अपने संदेहको दूर करनेके लिये वही प्रश्न कर रहे हैं, जिसका वे जगते समय लेटे-लेटे कुछ चरण पूर्व चिन्तन कर रहे थे। गुरुदेव स्वप्नमें ही उत्तर दे रहे हैं—बाबा विजय! कृष्ण सर्वतन्त्र स्वतन्त्र है। उनकी इच्छा निरकुश है। उनकी नित्य इच्छा यह है कि स्वकीय पेशवर्यको ढक कर माधुर्यका प्रकाश हो। ऐसी दशामें कृष्ण अपनी शक्तिको अपनेसे पृथक् सत्ता प्रदान करते हैं। इसी कारण भगवानकी वह पराशक्ति करोड़ों ललनाओंका रूप धारण कर कृष्णकी सेवा करनेका प्रयत्न करती है। पुनः कृष्ण शक्तिकी ऐश्वर्य प्रधान सेवासे पूर्ण रूपसे सन्तुष्ट न होनेके कारण उसी शक्तिके किसी विचित्र प्रभाव द्वारा उन ललनाओंको पृथक्-पृथक् गृहस्थका अभिमान प्रदान करते हैं अर्थात् वे ललनाएँ उस शक्तिके प्रभावसे अपनेको परायेकी रुपी मानती हैं। स्वयं भी उसी प्रकार उपपति सम्बन्ध धारण करते हैं। वे परकीय रसके लोभसे अपने आत्माराम धर्मका उल्लंघन कर उन परोद्धा मानिनियों ( गोपललनाओं ) के साथ रास आदि विचित्र लीलाएँ करते हैं। वंशी इस कार्यमें प्रिय सखी होती हैं। इन लच्छोंके द्वारा गोलोकमें नित्य परकीय भाव सिद्ध होता है। इसीलिये गोलोकके लीलावनसमूह एवं केलि बृन्दावन आदि नित्य वर्तमान रहते हैं। व्रजमें जो रासमण्डप, यमुना नदी, गिरीगोवर्धन आदि

लीलाके स्थानसमूह हैं, वे सब-के-सब गोलोकमें हैं। गोलोकके स्वकीयत्व और दाम्पत्य भाव इसी रूपमें वर्तमान हैं। शुद्धस्वकीयत्व वैकुंठमें विराजमान है। स्वकीयत्व-पारकीयत्व अचिन्त्यभेदभेद रूपमें गोलोकमें लक्षित होता है। किर देखो न, आश्चर्यका विषय तो यह है कि व्रजमें परकीय भाव ( जो गोलोकमें केवल अभिमानके रूपमें होता है ) पराये खीकी घटनाके समान दिखलायी पड़ने पर भी उसमें परदारत्व नहीं है। इसका कारण यह है कि वे ललनाएँ कृष्णकी अपनी शक्ति हैं। अनादि कालसे उनके साथ कृष्णका संयोग रहनेके कारण स्वकीयत्व और दाम्पत्य ही सिद्ध है। अभिमन्यु गोप-समूह गोलोकके तत्त्वभिमानके अवतार-विशेष हैं। वे कृष्णकी लीलाकी पुष्टिके लिये पति बन कर कृष्णको उपर्यन भावमें व्रजरंगका नेता किया है। प्रपञ्चसे अतीत गोलोकमें केवल अभिमान मात्रसे ही रसकी पूर्णरूपमें पुष्टि हो जाती है। प्रपञ्चान्तर्गत गोकुलमें विवाहधर्म और दाम्पत्यधर्म लहून प्रतीतिके लिये योगमाया द्वारा गोकुलगत अभिमानसमूह पृथक् सत्त्वके रूपमें ( शरीर धारण कर ) प्रकटित हैं अर्थात् यह सब कुछ योगमाया द्वारा सिद्ध है।

स्वप्नमें श्रीगुरुदेवके निकट स्वकीय और परकीय तत्त्वको सुनकर विजय कुमारका संदेह दूर हो गया। प्रपञ्चातीत गोलोक ही भौमगोकुल है—ऐसा विश्वास हट्ठ हो गया। व्रजरसकी परमानन्दमयी तादात्म्यस्वरूपता उनके हृदयमें उदित हुई। साथ ही अष्टकालीन व्रजकी नित्यलीलामें हट्ठता उत्तम हुई। सबेरे उठ कर उन्होंने सोचा कि श्रीगुरुदेवकी मुझ पर असीम कृपा है। अब रसके उपकरणोंको उनके निकट श्रवण करके भजनमें निष्ठा प्राप्त करूँगा।

विजयकुमार प्रसाद सेवाकर ठीक समय पर श्रीगुरुगोम्बामीके समीप उपस्थित हुए और उनको प्रेमसे रोते रोते प्रणाम किया। गुरुदेवने भी उनको बड़े प्रेमसे गलेसे लगा लिया और कहा—बाबा, तुम्हारे ऊपर कृष्णकी यथार्थ कृपा हुई है। मैं तुमको

देखकर धन्य हो जाता हूँ। इन प्रकार कहते कहते वे प्रेमसे अधीर हो पड़े।

कुछ देरके पश्चात जब उनकी बाह्य स्फूर्ति हुई, तब विजयकुमार उनको साष्टांग प्रणाम करके बोले—‘प्रभो’ मैं कृष्णकी कृपाको नहीं जानता; मैं तो आपकी कृपाको ही सब कुछ जानता हूँ। अब मैं गोलोककी अनुभूति प्राप्त करनेकी चेष्टा छोड़कर उन्नानुभूति प्राप्त करनेके प्रयासमें ही पूर्ण संतुष्ट हूँ। मैं ब्रजके रसवैचित्रयको मलीभाँति समझना चाहता हूँ। कृपा यह बतलाया जाय कि गोकुलकी जिन कन्याओंने कृष्णमें पतिभाव रखा था, उनको स्वकीया कहा जा सकता है या नहीं?

गोस्वामी—‘उन गोकुलकन्याओंमें पतिभाव-निष्ठा होनेके कारण उनका सात्कालिक स्वकीयत्व हुआ था। परन्तु वे स्वहपतः परकीया हैं। उनका स्वकीयत्व स्वभाव नहीं होने पर भी गम्भीर-विद्याद-रीतिमें कृष्णद्वारा स्वीकृत होनेके कारण उनका सम्प्रत अवस्थामें अर्थात् गोकुल लीलामें स्वकीयत्व सिद्ध है।

विजय—‘प्रभो, मैं धीरे धीरे बहुत कुछ जिज्ञासा करूँगा। श्रीउज्ज्वलनीलमणिके क्रमानुसार सब बातें समझनेका प्रयत्न करूँगा। पहले नायकके सम्बन्धमें सब बातें समझ लूँ। नायक चार प्रकारके हैं—अनुकूल, दक्षिण, शठ और धृष्ट। इनमेंसे अनुकूलके सम्बन्धमें बतलाइये ?’

गोस्वामी—‘जो अन्य ललनाथोंकी सृष्टा छोड़कर केवल एक नायिकाके प्रति अत्यधिक आसक्त होते हैं, वे अनुकूल नायक हैं। श्रीसीतादेवीके प्रति श्रीरामचन्द्रजीका और श्रीमती राधिकाजीके प्रति श्रीकृष्णका भाव अनुकूल नायकका है।

विजय—धीरोदात्त आदि चार प्रकारके नायकोंके पृथक् २ अनुकूल आदि भावोंका परिचय जानना चाहता हूँ। कृपा करके धीरोदात्त-अनुकूल नायकका लक्षण बतलावें।

गोस्वामी—‘धीरोदात्त-अनुकूल नायक गंभीर, विनयी, ज्ञानी, करुण, हृद्रवत, आत्मश्लाघाशून्य, गूढ़-गवर्ण और परम उदार होकर भी उन उन गुणों-

का परित्याग कर अपनी नायिकाका अभिसार करते हैं।’

विजय—‘धीरललित नायकका लक्षण बतलाइये।

गोस्वामी—रसिकता, नववौचन, परिहासपटुता और निश्चन्तता आदि धीरललितके गुण हैं। उसमें अविच्छेद विहार-लक्षणका संयोग होनेसे धीरललित नायक होता है।’

विजय—‘धीरशान्त नायक कैसा होता है?’

गोस्वामी—‘शान्त-स्वभाव, सिध्गु, बुद्धिमान, और विवेक आदि गुणोंसे युक्त नायक ही धीरशान्त-नुकूल है।

विजय—‘धीरोद्धतानुकूल नायकका लक्षण बतलाइये।’

गोस्वामी—‘मत्सर, अहंकारी, माचाची, कोषी और आत्म-प्रशंसक नायक अनुकूल होने पर भी धीरोद्धतानुकूल नायक होते हैं।

विजय—‘नायक किस प्रकार दक्षिण होते हैं?’

गोस्वामी—‘दक्षिण’-शब्दका अर्थ है—सरल। पूर्व नायिकाके प्रति गौरव, भय, प्रेम-दक्षिणयको छोड़े दिना भी अन्य नायिकाके प्रति जो अपने चित्तको लगाते हैं, वे दक्षिण नायक हैं। अनेक नायिकाओंमें सम भाव रखनेवाले नायकको भी दक्षिण नायक कहते हैं।

विजय—‘शठ नायकका लक्षण क्या है?’

गोस्वामी—‘जो नायक आमने-सामने प्रिय आचरण करता है, परन्तु पीठ-पीछे अप्रिय आचरण कर निरूद्ध अपराध करता है, वह शठ नायक है।’

विजय—‘धृष्टका लक्षण क्या है?’

गोस्वामी—‘अन्य नायिकाका भोगचिह्न ठ्यक्त होने पर भी जो निर्भय होकर भूठ बोलनेमें दक्ष है, वह धृष्ट है।’

विजय—‘प्रभो ! कुल मिलाकर कितने प्रकारके नायक होते हैं?’

गोस्वामी—‘हमारे तो कृष्णके सिवा कोई दूसरा और नायक नहीं है। वे एक ही कृष्ण द्वारकामें पूर्ण हैं, मथुरामें पूर्णतर हैं और ब्रजमें पूर्णतम हैं। वे पति और उपपति के भेदसे दो प्रकारके होनेके कारण

$3 \times 2 = 6$  प्रकारके हैं। पुनः धीरोदात्त आदि चार प्रकारके भेदके कारण  $6 \times 4 = 24$  प्रकारके हैं। फिर अनुकूल, दक्षिण, शठ और धूर्त-भेदसे  $24 \times 4 = 96$  प्रकारके नायक हैं। अब ऐसा समझना होगा कि स्वकीय रसमें चौधीस प्रकारके नायक हैं तथा परकीय रसमें भी चौधीस प्रकारके नायक हैं। ब्रजलीलामें स्वकीय रसका संकोच भाव होता है तथा परकीय रसकी प्रधानता होती है; अतएव यहाँ श्रीकृष्णमें परकीय रसके चौधीस प्रकारका नायकत्व नित्य विराजमान रहता है। लीलाके जिस अंशमें तथा जिस विभागमें जिस प्रकारके नायककी आवश्यकता होती है, श्रीकृष्ण उसी प्रकारके नायकके रूपमें अनुभूत होते हैं।

विजय—‘प्रमो, मैं नायक और नायककी गुण-विचित्रताका अनुभव कर रहा हूँ। अब मैं यह जानना चाहता हूँ कि नायकके सहायक कितने प्रकारके होते हैं?’

गोस्वामी—‘नायकके सहायक पाँच प्रकारके होते हैं—चेट, विट विदूषक, पीठमर्द और प्रियनम सखा। ये सभी नम’ (मधुर) वाक्य प्रश्नोग करनेमें निषुण, सदा गाढ़े अनुरागी, देश और कालके छाता, दक्ष, रुष गोपियोंको प्रसन्न करनेमें चतुर तथा रहस्य-पूर्ण मन्त्रणा देनेवाले होते हैं। पाँचों प्रकारके सहायकोंमें ये गुण-समूह पाये जाते हैं।’

विजय—‘चेट किसे कहते हैं?’

गोस्वामी—‘किसी वातका पता लगानेमें चतुर, गृह कर्मोंको करनेवाले तथा प्रगल्भबुद्धियुक्त भंगा और सूक्ष्मा आदि गोकुलमें कृष्णका चेट कार्य करते हैं।’

विजय—‘विट किसे कहते हैं?’

गोस्वामी—‘वेश-रचना आदि कार्योंमें दक्ष, धूर्त, वात-चीत करनेमें चतुर, वशीकरण आदि क्रियाओंमें पटु कड़ार और भारतीवन्ध आदि कृष्णके विट हैं।

विजय—‘विदूषक किसे कहते हैं?’

गोस्वामी—‘भोजनप्रिय, कलहप्रिय, अंगभंगी

और वाक्चातुरी तथा वेशद्वारा हँसानेवाले वसन्त आदि गोप तथा मधुमङ्गल आदि कृष्णके विदूषक हैं।’

विजय—‘पीठमर्द कौन-कौन हैं?’

गोस्वामी—‘नायक जैसा गुणवान् होकर भी नायककी आङ्गाके अनुसार चलनेवाले श्रीदाम ही कृष्णके पीठमर्द हैं।’

विजय—‘प्रियनम सखाका लक्षण क्या है?’

गोस्वामी—‘आत्यन्तिकरहस्यज्ञ, सखीभावान्वित, सुबल और अर्जुन आदि कृष्णके प्रियनम सखा हैं। अतएव ये दूसरे-दूसरे सभी सखाओंसे श्रेष्ठ हैं। चेट, विट, विदूषक, पीठमर्द और प्रियनम सखा—इन पाँचोंमें चेटोंका दास्य, पीठमर्दोंका वीर रस और बाकी सबका सख्य रस है। चेटगण किंकर है और शेष चार सखा हैं।

विजय—‘क्या सहायकोंमें खियाँ नहीं होती हैं?’

गोस्वामी—‘हाँ हैं। उनको दूती कहते हैं।’

विजय—‘दूतियाँ कितने प्रकारकी होती हैं?’

गोस्वामी—‘दो प्रकारकी होती हैं—स्वयं दूती और आपदूती। वटाक्ष और वंशीध्वनि स्वयंदूती हैं।’

विजय—‘अहा ! आपदूती कौन हैं?’

गोस्वामी—प्रगल्भ वचन बोलनेमें प्रवीण ‘बीरा’ और चाटु-वाक्य बोलनेमें चतुर ‘बुदा’, ये दोनों श्रीकृष्णकी आपदूती हैं। ‘स्वयं’ दूती और आपदूती ये असाधारण दूतियाँ हैं। इनके अतिरिक्त लिंगिनी, दैवज्ञा और शिल्पकारिणी आदि और भी अनेक साधारण दूतियाँ हैं। नायिका दूती-विचारके प्रसङ्गमें इनका विस्तारपूर्वक वर्णन किया जायगा।’

विजय—‘मैंने श्रीकृष्णरूप नायकके भाव और गुणोंका अनुभव कर किया है। तथा यह भी समझ गया हूँ कि पति और उपपति दोनों भावोंमें श्रीकृष्ण नित्य लीला करते हैं। वे द्वारकामें पतिभावमें तथा ब्रजपूरीमें उपपति भावमें लीला करते हैं। हमारे कृष्ण उपपति हैं; इसलिये ब्रजकी रमणियोंके सम्बन्ध में हमें जानना आवश्यक है।’

गोस्वामी—‘ब्रजेन्द्रनन्दन श्यामसुन्दरकी जो सब ब्रजवासिनी ललनार्द’ हैं, उनमें अधिकांश परकीया है। इसका कारण यह है कि परकीयाके विना मधुर रसका पूर्णतया विकाश नहीं होता। विवाह-सम्बन्ध-से पुरकी वनिताओंका रस सीमित रहता है। शुद्ध कामसे युक्त ब्रजवासियोंका रस असीम (अकुंठ) होता है और इसीरससे कृष्णको सर्वाधिक सुख प्राप्त होता है।’

विजय—‘इसका तात्पर्य क्या है?’

गोस्वामी—‘शृङ्गार रसके परम रसज्ञ श्रीरुद्र कहते हैं कि—स्त्रियोंकी वामता (वक्रता) और दुर्लभता (निषेध) आदि जो वाधाएँ हैं, वही कंदपंका परम आयुध-स्वरूप है। विष्णुगुप्तने कहा है कि, जहाँ निषेधरूप विशेषता होती है और मृगनयनी ललना दुर्लभ हो पड़ती है, उसी स्थान पर नायकका हृदय अधिकरूपमें आसक्त होता है। देखो, रास-लीलाके समय कृष्ण आत्माराम होने पर भी जितनी गोपियाँ थीं, उतने ही स्वरूपोंमें प्रकट होकर उनके साथ लीला किये थे। साधक मात्रको रासलीलाके अनुगत होना चाहिए। इसमें एक उपदेश यह है कि यदि साधक कल्याणकी इच्छा रखते हैं तो उन्हें भी भक्तकी भाँति उस लीलामें प्रवेश करना चाहिए। उनको कृष्ण जैसा आचरण कदापि नहीं करना चाहिए। तात्पर्य यह कि उनको गोपीभावसे गोपीके अनुगत होकर ही उस लीलामें प्रवेश करना चाहये।’

विजय—‘कृपया गोपीभावको कुछ अधिक स्पष्ट किया जाय।’

गोस्वामी—‘नन्द-नन्दन कृष्ण—गोप हैं। वे सिवा गोपियोंके किसी भी दूसरी रमणीके साथ रमण नहीं करते। शृङ्गार रसके अधिकारी साधक भी ठीक उसी भावसे कृष्ण-भजन करेंगे जैसे गोपियोंने भी कृष्णकी भजन-सेवा की है। साधक अपनेको भावनामार्गमें ब्रजगौपी भावना कर किसी सौभाग्यवती ब्रजवासिनीकी परिचारिका मानकर उनके निर्देशके अनुसार राधा-कृष्णकी सेवा करेंगे। अपने

को ‘परोदा’ माने विना रसोदय होना असंभव है। यह परोदा अभिमान ही ब्रजगोपीत्व धर्म है। श्रीरूप-गोस्वामीने लिखा है—

मायाकलितताहक्-स्त्रीशीलनेनानुसूयिमिः ।

न जातु ब्रजदेवीनां पापिमिः सह सङ्गमः ॥

( उज्जवल कृष्णवल्लभा प्र. १६ )

अर्थात्—परोदा अभिमानयुक्ता ब्रजदेवियोंका योगमाया-कल्पित उनके विवाहित पतियोंके साथ कभी संगम हुआ ही नहीं। अभिसार आदिके समय योगमायाकल्पित ठीक वैसी ही गोपीमूर्ति घरमें देखकर गोपगण ऐसा समझते थे कि हमारी पतियाँ घर पर ही हैं। अतएव वैसी अवस्थामें उनको कृष्णके प्रति ईर्षी-द्वेष करनेका अवकाश ही नहीं हुआ।

मायाकल्पित विवाहित पतियोंके साथ ब्रजदेवियों का कभी भी संगम नहीं हुआ; ब्रजगोपियोंके पति-समूह केवल उन-उन (गोलोकगत) भावोंके मायावतार मात्र हैं। उनका विवाह भी मायिक प्रत्यय (मायिक विश्वास) मात्र है—परदारत्व नहीं है। तथापि परोदात्व अभिमान निश्च वर्त्तमान होता है। ऐसा न होने से वामता, दुर्लभता, प्रतिवन्धकता, निषेध और भय आदि से उत्पन्न अपूर्व रसोदय कदापि स्वभावतः संभव नहीं है। वैसा अभिमान न रहनेसे ब्रजरस का नायिका-भाव प्राप्त नहीं किया जा सकता है; इसका उदाहरण वैकुंठकी लक्ष्मीजी हैं।’

विजय—‘अपनेको परोदा जाननेका भाव क्या है?’

गोस्वामी—‘ब्रजके किसी गोपके गृहमें पैदा हुई वालिका हूँ। नवयीवन प्राप्त होते ही मेरा विवाह किसी गोप युवकके साथ हो चुका है।’ ऐसा विश्वास होनेसे ही कृष्ण-संभोगकी लालसा बलवती होती है। इस प्रकार अपनेमें अप्रसूतिका गोपनारी-भावका आरोप करना ही ‘गोपीभाव है।’

विजय—‘यदि साधक पुरुष हो, तो पूर्वोक्त गोपीभावका आरोप कैसे सिद्ध हो सकता है?

गोस्वामी—‘माध्यिक स्वभावके पराधीन होनेके कारण लोग अपनेको पुरुष समझते हैं। शुद्ध चित्स्व-भावमें कृष्णके पुरुष परिकरोंको छोड़कर अन्य समस्त जीव ही रुही हैं। चिद्रूगठनमें वस्तुतः रुही पुरुष चिह्न न होने पर भी स्वभाव और हड़ अभिमानवश जो कोई भी ब्रजवासिनी होनेका अधिकार प्राप्त कर सकते हैं। जिनकी मधुर रसमें रुचि होती है, केवल वे ही ब्रजवासिनी होनेके अधिकारी हैं। रुचिके अनुसार साधन करनेसे उसीके अनुरूप सिद्धि उदय होती है।’

विजय—‘परोदाका महारूप क्या है ?’

गोस्वामी—‘जब परोदा ब्रजगोपियोंके हृदयमें कृष्ण-संभोगकी लालसा उत्पन्न होती है, तब वे स्वभावतः सर्वातिशायिनी शोभा और सद्गुण-वैभवकी खानि हो उठती हैं तथा प्रेमसौन्दर्यसे मणिडत हो जाती हैं। लहस्मी आदि शक्तियोंसे भी बढ़ कर उनका रस-माधुर्य अधिक होता है।’

विजय—‘वे ब्रजसुन्दरियाँ कितने प्रकारकी होती हैं ?’

गोस्वामी—‘वे तीन प्रकारकी होती हैं—साधनपरा, देवी और नित्य प्रिया।’

विजय—‘साधनपरा ब्रजसुन्दरियोंमें भी क्या कोई भेद होता है ?’

गोस्वामी—‘हाँ, साधनपरा सुन्दरियाँ दो प्रकारकी होती हैं—यौथिकी और अयौथिकी।’

विजय—‘यौथिकी कौन है ?’

गोस्वामी—‘जो ब्रजरसके साधनमें तत्पर होकर युथ-की-युथ ( मुण्ड-की-मुण्ड ) ब्रजमें जन्म लेती हैं वे यौथिकी अर्थात् युथसे युक्त होती हैं। यौथिकी दो प्रकारकी होती हैं, एक मुनिगण और दूसरी उपनिषद्गण।’

विजय—‘किन-किन मुनियोंने ब्रजमें जन्म प्रहण किया था ?’

गोस्वामी—‘जो मुनि गोपालके उपासक थे, परन्तु सिद्धि प्राप्त न कर सके थे, वे ब्रेत्रायुगमें राम-

चन्द्रका सौन्दर्य दर्शन कर अपने अभीष्ट साधनका प्रयत्न किये थे—वे ही गोपी भाव प्रहण कर ब्रजमें गोपियोंके रूपमें जन्मे थे। इसका उल्जेख पद्मपुराणमें पाया जाता है। बृहद्वामन पुराणके अनुसार उनमेंसे किसी-किसीने रासके प्रारम्भमें सिद्धि पायी थी।’

विजय—‘उपनिषदोंने किस प्रकार ब्रजमें गोपी-जन्म प्राप्त किये थे ?’

गोस्वामी—‘अतिशय सूक्ष्मदैर्शी महोपनिषद्गण गोपियोंका सौभाग्य दर्शन कर बड़े विस्मित हुए थे उन्होंने अद्वापूर्वक कठोर तपके फल-स्वरूप ब्रजमें गोपी जन्म प्राप्त किया था।’

गोस्वामी—‘जो गोपीभावके प्रति अत्यन्त आसक्त होकर उत्कंठापूर्वक अपने स्वाभाविक अनुराग द्वारा साधन करते हैं, वे प्राचीना और नवीना भेदसे दो प्रकारकी अयौथिकीके नामसे प्रसिद्ध हैं। कोई-कोई अवेली और कोई-कोई दो या तीन अथवा और भी अधिक एक साथ जन्म लेती हैं। प्राचीना अयौथिकीगण नित्यप्रिया गोपियोंके साथ बहुत दिन पहलेसे ही सालोक्य प्राप्त किये हुई होती हैं। देव-मानव आदि योनियोंमेंसे नवीनागण ब्रजमें आकर जन्म लेती हैं और क्रमशः प्राचीना होकर पूर्वोक्त रूपमें सालोक्य प्राप्त करती है।’

विजय—‘मैं साधनपराके सम्बन्धमें समझ गया। अब देवियोंके सम्बन्धमें बतलानेकी कृपा करें।’

गोस्वामी—‘जब कृष्ण स्वर्गमें अपने अंशसे देवयोनिमें अवतरण करते हैं, तब उनकी परितुष्टिके लिये नित्यकान्ताओंके अंश भी वहाँ देवियोंके रूपमें प्रकट होते हैं, वे देवियाँ ही कृष्णलीलामें गोप-कन्याओंके रूपमें जन्म लेकर अपनी अंशिनी नित्यप्रियाओंकी प्राण सखियाँ होती हैं।’

विजय—‘प्रभो ! कृष्ण किस समय देवयोनिमें अपने अंशसे जन्म लेते हैं ?’

गोस्वामी—‘कृष्ण स्वांशरूपसे अदितिके गर्भमें वामनके रूपमें जन्म लेते हैं और विभिन्नांशसे देवता होते हैं। शिव और ब्रह्माका मातृगर्भसे जन्म नहीं

होता है। ब्रह्मा और शिव विभिन्नांश होने पर भी उन साधारण जीवोंकी श्रेणीमें नहीं हैं, जिनमें पचास गुण विन्दु-विन्दुके रूपमें होते हैं। वे पचास गुण ब्रह्मा और शिवमें कुछ अधिक परिमाणमें तो होते ही हैं, अधिकन्तु उनमें आंशिकरूपमें पाँच गुण भी होते हैं, जो साधारण जीवमें नहीं पाये जाते हैं। इसीलिये इन दोनोंको प्रधान देवता कहा जाता है। गणेश और सूर्य भी उनी प्रकार होनेके कारण ब्रह्म-कोटीमें उपासित होते हैं। दूसरे समस्त देवगण जीवकी श्रेणीमें गन्य हैं। सभी देवता कृष्णके विभिन्नांश हैं। उनकी स्त्रियाँ—देवियाँ भी चित्तशक्ति के विभिन्नांश हैं। ब्रह्माने उन देवियोंको कृष्णके आविर्भावसे पूर्व ही कृष्णकी परितुष्टिके लिये जन्म लेनेके लिये आज्ञा दी थी। उनकी आज्ञानुसार अपनी रुचि और साधनके भेदसे उनमेंसे कुछ ब्रजमें और कुछ पुरमें ( ढारकामें ) जन्म लेती हैं। ब्रजमें जन्मी हुई देवियाँ ही कृष्ण प्राप्तिकी उत्कंठा हेतु नित्य-प्रियाओंकी प्राणसखियाँ होती हैं।

**विजय**—‘प्रभो, उपनिषदोंने तो गोपी जन्म प्राप्त किया था; परन्तु कृष्ण यह बतलाइये कि क्या वेदकी कोई दूसरी अधिष्ठात्री देवी भी ब्रजमें जन्म प्रहण करती हैं?’

**गोस्वामी**—‘वद्यपुराणके सृष्टि खण्डमें ऐसा लिखा है कि वेदमाता गायत्रीने भी गोपी जन्म लेकर श्रीकृष्णका संग प्राप्त किया था। उसी समयसे उन्होंने कामगायत्रीका रूप धारण कर लिया है।’

**विजय**—‘क्या कामगायत्री अनादि नहीं है?’

**गोस्वामी**—‘कामगायत्री निश्चय ही अनादि हैं। वे अनादि गायत्री पहले वेदमाता गायत्रीके रूपमें प्रकट थीं। पीछेसे साधनके प्रभावसे तथा अन्यान्य उपनिषदोंका सौभाग्य देखकर गोपालोपनिषदके साथ ब्रजमें जन्म लिया। कामगायत्रीके रूपमें नित्य होकर भी वेदमाता गायत्रीके रूप नित्य पृथक् विराजमान हैं।’

**विजय**—‘उपनिषद आदि सबने ब्रजमें जन्म

लेकर अपनेको गोपकन्याका अभिमान किया है और कृष्णको गोपनायकके अभिमानमें अपना पति बरण किया है। कृष्ण गन्धर्व विवाहकी रीतिसे उनके तात्कालिक पति हुए—इस बातको भी समझ गया; परन्तु कृष्णकी नित्य प्रियागण अनादि कालसे ही कृष्णकी संगिनी है, फिर कृष्ण उनके जो उपपति होते हैं, वह सम्बन्ध क्या केवल मायाकल्पित होता है?’

**गोस्वामी**—‘एक प्रवाससे मायाकल्पित ही है; परन्तु जड़मायाकल्पित नहीं है। जड़माया कृष्णलीलाका स्पर्श नहीं कर सकती है। ब्रजलीला प्रपञ्चके भीतर होने पर भी वह सम्पूर्णरूपसे जड़—मायातीत है। चिच्छकिका दूसरा नाम—योगमाया है। वे योग-माया ही कृष्णलीलामें एक ऐसा व्यापार प्रकट करती हैं कि जड़मायाप्रस्त द्रष्टा कृष्णलीलाको दूसरे रूपमें दर्शन करता है। वे ही गोलोक स्थित परोद्धा अभिमानको नित्य प्रियागणके साथ-साथ ब्रजमें लाकर उसे पृथक् सत्त्वका रूप देती हैं। फिर उन सत्त्वों (गोलोकके अभिमानसमूह जो अभिमन्युके रूपमें ब्रजमें स्थूल मूर्त्तिमें प्रकटित हैं) के साथ नित्य प्रियाओंका विवाह सम्पादन करा कर कृष्णको उपपति बनाती हैं। सर्वज्ञ पुरुष और सर्वज्ञ शक्तियाँ अपने-अपने रसके आवेशमें उक्त भावोंको स्वीकार करती हैं। इससे रसका उत्कर्ष और खेच्छामयकी इच्छाशक्तिकी परमोत्कर्षता लक्षित होती है। वैकुंठ और ढारकामें वैसा उत्कर्ष नहीं है। प्राणसखियोंका नित्य-प्रियाओंके साथ सालोक्य प्राप्त होने पर उनका कृष्णके प्रति संकुचित पतिभाव उदार होकर उपपति भाव हो पड़ता है। वही उनका परम लाभ है।’

**विजय**—‘बड़ा ही अपूर्व सिद्धान्त है। हृदय शीतल हो गया। अब कृपाकर नित्य प्रियाओंके सम्बन्धमें बतलाया जाय।’

**गोस्वामी**—‘तुम्हारे जैसा अधिकारी श्रोता नहीं मिलनेसे क्या श्रीगौरचन्द्र मेरे मुखसे इतना मूढ़ तत्त्व प्रकाश कर सकते थे! देखो, सर्वज्ञ श्रीजीव गोस्वामीने इस विषयमें स्थान-स्थान पर बड़े रहस्यपूर्ण

द्वंसे विचार किया है। उनकी टीकाओंको तथा कृष्णसन्दर्भ आदि प्रन्थोंको पढ़नेसे जान सकोगे। अनाधिकारी व्यक्ति हन परम गूढ़तम तत्त्वोंको जान कर पीछेसे विकृत धर्मका आभय न कर लें, इस दरसे श्रीजीव गोस्वामी सब समय चिन्तित रहते थे। आजकल रसविकृति और रसाभास आदि दोषसमूह जिसे वैष्णवप्राय लोगोंमें देख रहे हो, उसकी श्रीजीव गोस्वामीने उसी समय आशंका की थी। इतना सावधान होने पर भी वे उस अनिष्टसे रक्षा नहीं कर सके। तुम इस सिद्धान्तको उपयुक्त पात्रके अतिरिक्त दूसरोंके सामने कहना नहीं। अब नित्य प्रियाओंके सम्बन्धमें बतला रहा हूँ।'

विजय—‘नित्यप्रिया कौन हैं? यद्यपि मैंने अनेकानेक शास्त्रोंका अध्ययन किया है, फिर भी श्रीगुरुदेवके मुख्यार्थिन्दसे ही इस सुधाका पान करना चाहता हूँ।’

गोस्वामी—‘नित्य प्रियागण ब्रजमें कृष्णकी तरह सौन्दर्य विद्यम् आदि गुणोंका आभय होती है। इनमें राधा और चन्द्रावली मुख्य हैं। ब्रह्मसंहितामें इनके सम्बन्धमें लिखा है—

आनन्दचिन्मय रसप्रतिभाविताभि-  
स्ताभिर्य एव निजरूपतया कलाभिः।  
गोक्षोक एव निवसत्यस्तिलात्मभूतो  
गोविन्दमादि पुरुषं तमहं भजाभिः॥ (ब्र.सं.४।३७)

सच्चिदानन्दरूप परतस्वका आनन्दांश जब चिद् अंशको ज्ञाभित करते हैं, तब उससे पृथक् हुई हादिनी त्रिभा द्वारा भावित होकर श्रीमती राधिका आदि जो समस्त ललानाएँ प्रकट होती हैं, उनके साथ एवं अपने रूप अर्थात् चित्तस्वरूप द्वारा स्त्रिघृषीसठ कलाएँ, सबके साथ अखिलात्मभूत होकर भी जो नित्य गोलोक धाममें निवास करते हैं, उन गोविन्दका भजन करता हूँ। वेदके सार स्वरूप इस ब्रह्मवाक्यमें नित्य प्रियाओं। उल्लेख मात्र है। वे नित्य हैं अर्थात् देश और कालसे अतीत चित्तशक्तिके प्रकाश हैं—यह सत्य है। चौसठ कलाएँ उनकी नित्यलीला हैं। ‘कलाभिः स्वांशरूपाभिः शक्तिभिः’ इस टीका द्वारा दूसरे प्रकारका अर्थ होने पर भी मैंने श्रीस्वरूप दामोदर गोस्वामीकृत अर्थको ही बतलाया है। यही उसका नितान्त गूढ़ार्थ है और श्रीरूप सनातन तथा श्रीजीवके हृदय-सम्पूर्णमें छिपा हुआ निगृह धन है।’ (क्रमशः)

### जगद्गुरु श्रीभक्तिविनोद ठाकुरके तिरोभाव और श्रीश्रीरथयात्राका आह्वान आदरणीय महोदय!

गौडीय-वैष्णवाचार्य-कुलतिलक उंविश्वापाद श्रीसच्चिदानन्द भक्तिविनोद ठाकुरके निरोभाव और श्रीश्रीजगन्नाथदेवकी रथयात्राके उपलक्ष्यमें श्रीगौडीय वेदान्त समितिके शास्त्रामठ श्रीउद्धारण गौडीय मठ, चूँचूँझामें आगामी १० आषाढ़, २४ जून १९६०, शुक्रवारसे २० आषाढ़, ४ जुलाई १९६० सोमवार ११ दिनों तक प्रवचन, कीर्तन, नगर संकीर्तन, भाषण, महाप्रसाद वितरण आदि भक्तिके विधिध अङ्गोंका विराट अनुष्ठान होने जा रहा है।

धर्मप्राण सञ्जनोंसे प्रार्थना है कि वे इस अवसर पर उक्त स्थान पर अधिकसे अधिक संख्यामें उपस्थित होकर समितिके सदस्योंको परमानन्दित और उत्साहित करेंगे। दैनिक योगदान करनेमें असर्वथ होने पर प्राण, अर्थ, बुद्धि और वाणीसे समितिके सेवा कार्योंके प्रति सहानुभूति प्रदर्शन करके भी अनुगृहीत करेंगे।

विवेदक—

श्रीगौडीय वेदान्त समितिके सम्बन्धन